अनुक्रम

पहला प्रवचन

भारत का भाग्य

मेरे प्रिय आत्मन्!

भारत के संबंध में कुछ भी सोचना निश्चित ही चिंता से भरता है। भारत के संबंध में सोचता हूं, तो एक कड़ी मेरे मन में इस तरह घूमने लगती है जैसे कोई कागज की नाव पानी की भंवर में फंस जाए और चक्कर खाने लगे। वह कड़ी न मालूम किसकी है। उस कड़ी के आगे और क्या कड़ियां होंगी, वह भी मुझे पता नहीं। लेकिन जैसे ही भारत का ख्याल आता है वह कड़ी मेरे मन में चक्कर काटती है, वह मेरे जहन में घूमने लगती है। और वह कड़ी यह हैः

"हर शाख पर उल्लू बैठे हैं, अंजामे गुलिस्तां क्या होगा?"

अगर किसी फुलवारी में हर पौधे की शाखाओं पर उल्लू बैठे हों, तो उस फुलवारी का क्या होगा?

"उन उल्लुओं की तरफ देखो, तो फुलवारी का क्या होगा?"

चिंता पैदा होती है। भारत में कुछ ऐसा ही हुआ है। बुद्धिहीनता के हाथ में भारत की पतवार है। जड़ता के हाथ में भारत का भाग्य है। नासमझियों का लंबा इतिहास है, अंधविश्वासों की बहुत पुरानी परंपरा है, अंधेपन की सनातन आदत है, और उस सबके हाथ में भारत का भाग्य है। लेकिन यह ख्याल उठता है, यह सवाल भी कि आखिर भारत का यह भाग्य अंधेपन के हाथ में क्यों चला गया है? भारत का यह सारा भाग्य अंधकार के हाथों में क्यों है? सौभाग्य क्यों नहीं है भारत के जीवन में, दुर्भाग्य ही क्यों है? हजार साल तक दास रहे कोई देश; हजारों साल तक गरीब, दीन-हीन रहे कोई देश, हजारों वर्ष के विचार के बाद भी किसी देश का अपना विज्ञान पैदा न हो सके, अपनी क्षमता पैदा न हो सके; नये-नये देशों के सामने प्राचीनतम देश को हाथ फैला कर भीख मांगनी पड़े। अमरीका की कुल उम्र तीन सौ वर्ष है। तीन सौ वर्ष जिनकी संस्कृति की उम्र है, उनके सामने जिनकी संस्कृति की उम्रों को सनातन कहा जा सके; कोई दस हजार वर्ष पुरानी, उनको भीख मांगनी पड़े, तो दस हजार वर्ष से हम क्या कर रहे थे? दस हजार वर्षों में हमने पृथ्वी पर क्या किया है? हमारे नाम पर क्या है? हम दस हजार वर्ष चुपचाप बैठे रहे हैं या हमने आंख बंद करके दस हजार वर्ष गंवा दिए हैं? और आगे स्थिति और विकृत होती चली जाती है।

एक अमरीकी विचारक ने अभी एक किताब लिखी है--उन्नीस सौ पचहत्तर। उस किताब की सारी दुनिया में चर्चा है, सिर्फ हिंदुस्तान को छोड़ कर। उन्नीस सौ पचहत्तर में उसने हिंदुस्तान के बाबत बातें की हैं और हिंदुस्तान में उसकी कोई चर्चा नहीं है। उन्नीस सौ पचहत्तर में उसने लिखा है कि उन्नीस सौ पचहत्तर और अठहत्तर के बीच हिंदुस्तान में इतना बड़ा अकाल पड़ेगा, जितना बड़ा अकाल मनुष्य के इतिहास में किसी देश में कभी भी नहीं पड़ा। उस अकाल में उसके हिसाब से अंदाजन दस करोड़ से लेकर बीस करोड़ तक लोगों के मरने की संभावना सिर्फ भारत में पैदा हो जाएगी। उसके आंकड़े दुरुस्त हैं, भूल हो सकती है थोड़ी-बहुत, लेकिन वह भूल इसमें नहीं होगी कि कम लोग मरेंगे, वह भूल इसमें होगी कि ज्यादा लोग मर सकते हैं।

दिल्ली में एक बड़े नेता से मैंने उस किताब की बात कही। उनसे मैंने कहाः आपने उन्नीस सौ पचहत्तर पढ़ी है? उसमें भारत में दस वर्षों के भीतर दस करा.ेड से लेकर बीस करोड़ लोगों तक के मरने की अकाल की संभावना की बात की गई है। वह नेता कहने लगेः उन्नीस सो पचहत्तर? उन्नीस सौ पचहत्तर अभी बहुत दूर है।

जिनको उन्नीस सौ पचहत्तर दूर दिखता हो उनके पास देखने वाली आंखें हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। देश की जिंदगी में वर्ष ऐसे बीत जाते हैं जैसे आदमी की जिंदगी में क्षण बीतते हैं। देश की जिंदगी में सदियां ऐसे बीतती हैं जैसे एक आदमी की पूरी जिंदगी बीत जाती है। पता भी नहीं चलता देश की उम्र में सदियों का। लेकिन आंखें हों तो आगे दिखाई पड़ सकता है, आंखें न हों तो आगे दिखाई नहीं पड़ सकता है। उन्नीस सौ पचहत्तर निकट आता चला जाएगा, हम बच्चे पैदा करते चले जाएंगे। और कुछ हम पैदा नहीं करते हैं सिवाय बच्चों के। असल में हमने भौतिक चीजें पैदा न करने का तय कर रखा है। हम कोई भौतिकवादी लोग तो हैं नहीं, मैटीरियलिस्ट तो हैं नहीं कि हम भौतिक चीजें पैदा करें। हम तो सिर्फ आदमी पैदा करते हैं। आध्यात्मिक चीज पैदा करते हैं। और उसको हम पैदा करते चले जा रहे हैं। संख्या आसमान को छूने लगी, और हमारी कोई पैदावार नहीं है दूसरी। और सब हम हाथ पसार कर भीख मांग कर काम चला रहे हैं। लेकिन उस गड्ढे की तरफ भी हम नहीं देखेंगे जिसकी तरफ हम सरके जा रहे हैं।

नेता कहते हैं, वह बहुत दूर है; साधु-संन्यासी कहते हैं, बच्चे भगवान पैदा करता है, इसमें आदमी का क्या हाथ है? और जब भगवान पैदा करता है, वह फिकर भी करेगा। उसने हमेशा फिकर की है, वह आगे भी फिकर करेगा। साधु-संन्यासी यही समझाते हैं। नेता कहते हैं, कोई मुसीबत... नेताओं को सिवाय चुनाव के दूसरी कोई मुसीबत दिखाई नहीं पड़ती। उनकी आंखों में सिर्फ चुनाव दिखाई पड़ता है और कुछ उनको दिखाई नहीं पड़ता। और उनको चुनाव इसलिए दिखाई पड़ता है कि उनको सिर्फ कुर्सियां दिखाई पड़ती हैं और कुछ दिखाई नहीं पड़ता। यह सारी की सारी दशा जरूर किसी बुनियादी भूल के कारण पैदा हो गई है। और वह बुनियादी भूल यह है कि हजारों साल से भारत को विचार नहीं करना है, ऐसी शिक्षा दी जा रही है। वह हमारे दुर्भाग्य का मूल-सूत्र है।

भारत में विश्वास करना है, विचार नहीं करना है; श्रद्धा करनी है, विवेक नहीं करना है; मान लेना है, सोचना नहीं है; यह सिखाया जा रहा है। गुरुओं की लंबी परंपरा एक ही काम कर रही है कि हर आदमी से विचार के बीजों को उखाड़ कर फेंक दो और विश्वास के कचरे की जड़ें जमा दो। हमें यही समझाया जाता रहा है कि विश्वास करना परम धर्म है। और मैं आपसे कहना चाहता हूं कि जो आदमी विश्वास करता है, वह आदमी धार्मिक तो कभी नहीं हो पाता, आदमी भी नहीं हो पाता है। धार्मिक होना तो बहुत दूर है। विचार की शक्ति ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है। जागा हुआ विवेक ही मनुष्य की आत्मा है। भारत की आत्मा खोती चली गई है। क्योंकि विवेक और विचार के हम दुश्मन हैं। हम कहते हैं, बस मान लेना चाहिए। गीता को इसलिए मान लेना चाहिए कि वह कृष्ण कहते हैं, और गांधीवाद को इसलिए मान लेना चाहिए क्योंकि गांधी जी कहते हैं, बुद्ध के वचन इसलिए मान लेने चाहिए कि बुद्ध भगवान हैं, और महावीर के वचन इसलिए मान लेना चाहिए कि वे तीर्थंकर हैं। लेकिन कौन तय करता है कि कौन तीर्थंकर है, कौन महात्मा है, कौन भगवान है? यह भी मान लेना चाहिए क्योंकि यह किताबों में लिखा हुआ है।

और फिर जो भी कहा जाए, और चाहे वह बुद्धिपूर्ण हो, अबुद्धिपूर्ण हो, योग्य हो, अयोग्य हो, हितकर हो, अहितकर हो, उसको मान लिया जाना चाहिए। मान लिया जाना ही एक योग्यता है हमारी। जो नहीं मानता, वह नास्तिक है, वह भटका हुआ है।

मैं आपसे कहता हूंः मानने वाले लोग स्वयं तो अंधे हो ही जाते हैं, क्योंकि मानने वाले को आंख खोलने की जरूरत नहीं रहती, मानने वाले के लिए आंख खोलने की क्या जरूरत है? आंख खोलने की जरूरत तो उसके लिए है जो देखना चाहता है खुद, सोचना चाहता है, चलना चाहता है, समझना चाहता है, उसे आंख खोलने

की जरूरत है। लेकिन आंख खोलना इस देश में पाप है। यहां आंख बंद कर लेना पुण्यात्मा का लक्षण है। जिंदगी से आंख बंद कर लो। दुनिया कुछ भी सोच-समझ रही हो, तुम आंख मत खोलना, तो देश फिर अभाग्य में, दुर्भाग्य में, दुर्घटना में, अंधेरे में नहीं गिरेगा तो और क्या होगा? और जब इतना अंधापन हो, इतना अंधेरा हो, तो स्वभावतः, स्वभावतः इतने अंधकार में, इतने अंधेपन में अंधेरे के रहने वाले जीव-जंतु अगर नेतृत्व करने लगें, तो कोई आश्चर्य तो नहीं।

मैंने सुना है, बंगाल के एक गांव में एक दिन सुबह-सुबह एक घटना घटी। एक छोटा सा तेली है, उसकी तेल की दुकान है, वह अपनी तेल की दुकान पर तेल बेच रहा है। गांव में एक विचारक रहता था, वह तेल खरीदने आया है। वह अपना बर्तन सामने रख कर तेल तुलवा रहा है, तभी उसने देखा कि तेली के पीछे बैल चल रहा है, कोल्हू चला रहा है। लेकिन बैल को कोई हांकने वाला नहीं है, बैल अपने आप ही चल रहा है। उस विचारक को बड़ी हैरानी हुई! उसने उस तेली को पूछा कि तुम्हारा बैल बड़ा धार्मिक मालूम पड़ता है, कोई चला ही नहीं रहा और यह चल रहा है! और भारत में ऐसा तो होता ही नहीं, चपरासी से लेकर राष्ट्रपति तक जब तक पीछे कोई हांकने वाला न हो, कोई चलता ही नहीं। यह बैल कैसा गड़बड़ है, यह भारतीय नहीं मालूम होता, नस्ल कहां की है? यह अपने आप क्यों चल रहा है? उस तेली ने कहाः बैल शुद्ध भारतीय है, इसीलिए चल रहा है। दूसरी जाति का बैल होता, तो खड़े होकर पता भी लगाता कि कोई पीछे है कि नहीं? लेकिन शायद आप देख नहीं रहे हैं, महाशय, उस तेली ने कहा कि मैंने उसकी आंख पर पट्टियां बांध दी हैं, उसे दिखाई भी नहीं पड़ता कि कोई पीछे है या नहीं है। उस तेली ने कहा, जिसका भी शोषण करना हो उसकी आंख पर पट्टी बांध देना बहुत जरूरी होता है--चाहे बैल हो और चाहे आदमी हो। आंख पर पट्टी न हो तो आदमी का शोषण किया जाना बहुत मुश्किल है।

शोषण चाहे राजनैतिक हो, चाहे धार्मिक, शोषण के लिए शोषित की आंख पर पट्टी होनी बहुत जरूरी है। अंधा ही अपना खून चुसवा सकता है। आंख वाला कैसे चुसवा सकता है? उस विचारक ने कहाः यह तो ठीक है कि आंख पर पट्टी बांध दी, लेकिन बैल कभी रुक कर यह पता तो चला सकता है कि पीछे कोई हांकने वाला है या नहीं! रुक कर तो पता चल जाएगा, जब नहीं हांका जाएगा तो वह समझ सकता है कोई पीछे नहीं है। उस तेली ने कहाः महाशय! आप बैल को ज्यादा बुद्धिमान समझते हैं या मुझको? अगर ऐसा होता, बैल ज्यादा बुद्धिमान होता तो वह तेल बेचता और मैं कोल्हू चलाता। मैंने उसके गले में घंटी बांध रखी है। घंटी बजती रहती है बैल चलता रहता है, घंटी बजती रहती है मैं समझता हूं बैल चल रहा है। जैसे ही घंटी रुकी कि मैं कूदा और मैंने बैल को हांका। मेरी पीठ है बैल की तरफ, लेकिन कान मेरे वहां लगे हैं। घंटी बजती रहती है मैं जानता हूं बैल चल रहा है। वह विचारक भी जिद्दी रहा होगा, विचारक जिद्दी होते ही हैं। उसने कहा कि यह मैं समझ गया ठीक है, घंटी मुझे सुनाई पड़ रही है, लेकिन बैल खड़े होकर गर्दन भी तो हिला कर घंटी बजा सकता है। उस तेली ने कहाः महाराज! जोर से मत बोलिए, बैल अगर सुन लेगा तो मैं बहुत मुसीबत में पड़ जाऊंगा। और आप आगे से किसी और दुकान से तेल खरीद लेना। ऐसे आदमियों का साथ ठीक नहीं होता, सोहबत का असर पड़ जाता है।

भारतीय चित्त के साथ भी बैल जैसा व्यवहार किया गया है। आंख पर पट्टियां हैं, गले में घंटियां हैं, और भारत को जोता गया है। फायदा हुआ है कुछ लोगों को, फायदा नहीं होता तो यह कभी चलता नहीं। फायदा बहुत हुआ है सत्ताधिकारियों को। चाहे वे सत्ताधिकारी किसी भी तरह के हों, चाहे राजनैतिक सत्ता हो उनके हाथ में, चाहे धार्मिक सत्ता हो, चाहे आर्थिक सत्ता हो। सत्ताधिकारी के लिए यह हितकर है। यह मंगलदायी है

कि लोग न सोचें, न विचारें, क्योंकि सोच-विचार से आंख खुल जाती है। आंख पर पट्टी बांधने की तरकीब हैः श्रृद्धा करो, विश्वास करो, अनुगमन करो, पीछे चलो, अपनी बुद्धि पर कभी जोर मत देना। कृष्ण को मानो, राम को मानो, गांधी को मानो, अपने को कभी मत मानना। बस एक चीज से बचना, खुद को मानने से। और सबको मानना कोई हर्जा नहीं है। क्योंकि जो आदमी दूसरों को मानता रहता है उसकी खुद की जानने और सोचने की क्षमता धीरे-धीरे क्षीण हो जाती है। आखिर जरूरत नहीं रहती उसकी, जब दूसरों ने सब कह दिया है सत्य तो मुझे और खोजने की क्या जरूरत? अगर एक आदमी तीन साल तक आंख बंद करके बैठ जाए, तो आंखें भी रोशनी खो देंगी।

भारत ने बुद्धि का उपयोग हजारों साल से नहीं किया है, और अगर भारत ने बुद्धि खो दी हो, तो कोई आकस्मिक घटना नहीं घट गई है। हजारों साल तक पंगु पड़ी है बुद्धि, कोई उपयोग नहीं कर रहा है। बाप बेटे से कह रहा है कि मानो जो हम कहते हैं, क्योंकि मैं बाप हूं। फिर बाप होने से क्या सही हो जाता है तू? बाप होना क्या कोई किसी चीज के सही होने का सबूत है? शिक्षक विद्यार्थियों से कह रहा है कि हम जो कहते हैं मानो। क्योंकि आप तीस साल पहले पैदा हो गए थे, कोई बहुत ऊंचा काम किया है आपने कि आप जो कहते हैं वह सही हो जाएगा? सही होने की कसौटी उम्र नहीं होती। न बाप होना होता है, न शिक्षक होना होता है। सही होने की कसौटी के कुछ और अर्थ होते हैंः तर्क होता है, विचार होता है। कारण होते हैं किसी चीज के सही और गलत होने के। ये कारण नहीं होते कि मैं कौन हूं इसलिए सही मानो। लेकिन यही हमारा सूत्र है अब तक। इस सूत्र के कारण भारत में बच्चे पैदा होते हैं, लेकिन उनकी प्रतिभा कुंठित हो जाती है। वह प्रतिभा विकसित नहीं होती। भारत का जीनियस, मेधा विकसित नहीं होता।

सोच-विचार की हवा ही नहीं है। और जिंदगी से लड़ना है तो सोचना पड़ेगा। हारना है तो मत सोचिए। अगर जिंदगी को जीतना है तो विचार के अतिरिक्त कोई सूत्र, कोई शक्ति आदमी के हाथ में नहीं है। अगर जिंदगी के राज जानना है, अगर पदार्थ में छिपी हुई शक्तियों के मालिक बनना है, अगर प्रकृति में छिपा हुआ रहस्य खोजना है, अगर आकाश और चांद-तारों पर ताकत लानी है, तो विचार, विचार, विचार, उसके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। नहीं तो, नहीं तो दीन-हीन हो जाएंगे, दरिद्र हो जाएंगे, गुलाम हो जाएंगे। जब हो जाएंगे, तो फिर, फिर एक ही रास्ता रहेगा, भाग्य को, कि भाग्य में ही यह था और कुछ नहीं। विश्वास करने वाले लोगों के हाथ में भाग्य के अतिरिक्त अपील के लिए कोई अदालत नहीं रह जाती। बस भाग्य! जो भी कौम विश्वास करती है वह भाग्यवादी हो जाती है। उसको ऐसा लगने लगता है, जो हो रहा है, होगा। आदमी बचपन में मर जाए, तो उसका भाग्य; अस्सी साल जी कर मर जाए, तो भाग्य; बीमार रहे तो भाग्य, स्वस्थ रहे तो भाग्य; गरीबी हो तो भाग्य, अमीरी हो तो भाग्य; देश गुलाम हो जाए तो भाग्य, और अंग्रेजों का दिमाग फिर जाए और देश को आजाद कर दें तो भाग्य, हमारा इसमें क्या कसूर? हमारा कोई कसूर नहीं है आजादी के लेने में, अंग्रेजों की गलती है। हम तो हजारों साल तक गुलाम रहने को भी राजी थे। अंग्रेजों के दिमाग फिर गए, न मालूम कैसी गड़बड़ हो गई? वे चले गए। हम तो भाग्य पर बैठे रहते। हम कभी कुछ न करते।

विश्वास की छाया है भाग्य। और जिस समाज और जिस देश के दिमाग में भाग्य बैठ गया, उसका पुरुषार्थ मर जाता है। सुसाइड हो जाती है, आत्महत्या हो जाती है। फिर करने का कोई सवाल नहीं रह जाता है, करते तो वे हैं जो मानते हैं कि हमारे करने से कुछ होगा, जो मानते हैं हमारे करने से कुछ भी नहीं होगा, करने वाला कोई और है, हम तो गुड्डियां हैं, जिनके धागे भगवान के हाथ में हैं, वह नचा रहा है। भगवान भी खूब मदारी है, जाने काहे के लिए नचा रहा है इन गुड्डियों को? और अब तक थक भी नहीं गया, और नचाए चला जा रहा है।

हम थक गए, गुड्डियां थक गईं, गुड्डियां कहती हैं आवागमन से छुटकारा चाहिए, मोक्ष चाहिए, लेकिन वह मदारी नहीं थकता, वह नचाए चला जा रहा है।

हम सब उसके हाथ के खिलौने हैं, अगर हम किसी के हाथ के खिलौने हैं तो जिंदगी एक व्यंग्य हो गई, मजाक हो गई। और व्यंग्य भी बहुत खतरनाक हो गया। लेकिन यही हमारी दृष्टि है। विश्वास करने वाले लोग भाग्यवादी हो जाएंगे। और भाग्यवादी लोग पुरुषार्थ खो देंगे, श्रम खो देंगे, संकल्प खो देंगे, जिंदगी से लड़ने की क्षमता और साहस खो देंगे। रोना उनके हाथ में रह जाएगा। बैठ कर रोएंगे कतार बांध कर और इस रोने को धर्म कहेंगे कि हम धार्मिक कार्य कर रहे हैं।

मंदिरों में कर क्या रहे हैं हम? कोई प्रार्थना कर रहा है मंदिरों में? मंदिरों में सिवाय रोने के और कोई काम नहीं किया जा रहा है। कोई अपनी बीमारी के लिए हाथ जोड़ कर रो रहा है, कोई लड़के की नौकरी के लिए रो रहा है, कोई किसी और बात के लिए रो रहा है। मंदिरों में लोग रो रहे हैं। हमारी प्रार्थना रोने के सिवाय और कुछ भी नहीं है। और चौबीस घंटे ही हम रो रहे हैं। क्योंकि हम तो कुछ कर नहीं सकते, कुछ हो रहा है। हम चिल्ला सकते हैं। अगर पानी नहीं गिरता है देश में, तो हम यज्ञ कर सकते हैं; यज्ञ रोना है। यज्ञ से पानी गिरने का तीन काल में भी कोई संबंध नहीं है। तुम कितनी आग जलाते हो, कितना गेहूं जलाते हो, कितना घी जलाते हो, बादलों को जरा भी मतलब नहीं है कि तुम क्या पागलपन कर रहे हो? बादलों को पता भी नहीं होगा कि आपके ब्रह्मचारी और आपके संन्यासी आग में घी डलवा रहे हैं। और पागलों की तरह चक्कर काट रहे हैं उसका और मंत्र बोल रहे हैं। यह बादलों को पता भी नहीं है। और अगर पता होगा तो बहुत हंसते होंगे मन में कि कैसे नासमझ लोग हैं, यह क्या कर रहे हैं? इससे पानी गिरने का क्या संबंध है?

लेकिन भाग्यवादी लोग, विश्वासी लोग क्या कर सकते हैं? किताब में लिखा है कि ऐसा करने से पानी गिरेगा तो वे चक्कर लगाते रहते हैं, करते रहते हैं। नहीं पानी गिरता तो विश्वासी मानते हैं कि हमारे करने में कोई गलती रह गई होगी, नहीं तो पानी तो जरूर गिरता। कलयुग आ गया है इसलिए गड़बड़ हो रही है, नहीं तो पानी तो गिरता। पहले तो ऋषि-मुनि गिरा लेते थे।

वहां रूस में वे बादलों को खींच कर ले आएंगे अपनी जमीन पर। बादल लाए जा सकते हैं, जहां भी चाहा जाए वहां लाए जा सकते हैं। बादलों को आदमी अपनी मर्जी से खींच कर कहीं भी ला सकता है। बादलों को मजबूर किया जा सकता है कि पानी गिराओ। लेकिन मंत्र से और यज्ञ से यह नहीं होता है। यज्ञ और मंत्र हमारी नपुंसकता के प्रतीक हैं; हमारी सामर्थ्य के नहीं, इंपोटेंस के, जो कुछ भी नहीं कर सकते, वे यज्ञ वगैरह करते हैं। यह आखिरी उपाय है दीन-हीनों का। सिर पटकते हैं, व्यर्थ ही समय खराब कर रहे हैं। लेकिन नहीं, वह जो हमें सिखाया गया है हजारों साल तक हम शक भी नहीं करेंगे, संदेह भी नहीं करेंगे। संदेह पैदा हो तो विचार पैदा होगा, विचार पैदा हो तो पुरुषार्थ पैदा होता है।

संदेह पहला सूत्र है। संदेह पैदा हो, डाउट पैदा हो, तो विचार पैदा होता है। क्योंकि संदेह कहता है, सोचो, क्या है ठीक? अगर यह ठीक नहीं है, तो ठीक क्या है? अगर यही ठीक है, तो सोचने की कोई जरूरत नहीं है, बात खत्म हो गई। ठीक हमारे पुरखे हमेशा के लिए तय कर गए हैं। हमारे हाथ में अब कोई काम नहीं है। सोचने का क्या सवाल है? संदेह पैदा होता है, तो विचार पैदा होता है। और जब विचार पैदा होता है, तो पुरुषार्थ पैदा होता है, कुछ करने का सवाल उठता है। जब विचार लेता है आदमी, तो करके देखता है कि हो सकता है या नहीं हो सकता है।

अभी कुछ वर्षों पहले एक पाश्चात्य डाक्टर डेनीज हिंदुस्तान आया। उसने स्वामी शिवानंद की एक किताब पढ़ी, आपमें से कई लोगों ने पढ़ी होगी। क्योंकि फिजूल किताबें पढ़ने के सिवाय हम कोई काम ही नहीं करते। स्वामी शिवानंद की एक किताब उसने पढ़ी, उस किताब में लिखा हुआ है कि ओम का पाठ करने से हर तरह की बीमारी तत्काल दूर हो जाती है। और यह भी लिखा है कि ओम का पाठ करने से बीमारी तो क्या, अगर कोई आदमी पूरे श्रद्धा, विश्वास से ओम का पाठ करे, तो मृत्यु को भी जीत लेता है। कई किताबों में लिखा है। स्वामी शिवानंद का कोई कसूर नहीं। उन्होंने कापी किया होगा कहीं से। यहां हिंदुस्तान में कोई अपनी तरफ से तो कुछ लिखता ही नहीं, सिवाय कार्बनकापी के। इसलिए कसूर उनका कोई भी नहीं। उनकी कोई गलती नहीं है। वह तो कई किताबों में लिखा हुआ है। उन्होंने उतार दिया होगा। हिंदुस्तान में किताब लिखने का ढंग यह है कि दस किताब पढ़ो और एक किताब लिखो। फौरन किताब पैदा हो जाती है। इसलिए उनकी कोई गलती नहीं है। उन्होंने तो पुरखों ने जो पहले भी कहा है, उसको ही दोहरा दिया है।

वह डेनीज डाक्टर... और उसने जब यह सुना कि स्वामी शिवानंद भी पहले डाक्टर थे, संन्यासी होने के पहले, लेकिन उसको पता नहीं कि हिंदुस्तान का कोई डाक्टर विश्वास योग्य नहीं है। डाक्टर ऊपर से रहता है, भीतर वही हिंदुस्तानी पागल दिमाग बैठा हुआ है। कब गेरुआ वस्त्र पहन लेगा, कुछ पता नहीं। और कब राम-राम जपने लगेगा, कुछ पता नहीं। और अभी भी दवाई, इंजेक्शन लगाते वक्त भीतर-भीतर जप रहा हो, तो कोई ठिकाना नहीं। उसने सोचा कि डाक्टर, यह शिवानंद तो डाक्टर था, तो यह तो जब लिख रहा है तो कुछ सोच कर लिख रहा होगा कि ओम के पाठ से बीमारियां दूर हो जाती हैं। जब डाक्टर है तो कुछ सोच कर लिख रहा होगा। और जब यह कहता है कि मृत्यु तक जीती जा सकती है, तो कोई प्रयोग करके लिख रहा होगा। क्योंकि पश्चिम में कोई कुछ भी नहीं लिख देता है। लेकिन उन्हें पता नहीं, हमारी आदतों का कि हमें इसकी फिकर ही नहीं कि हम क्या लिखते हैं, क्या कहते हैं। हम कुछ भी कह सकते हैं। हम कुछ भी लिख सकते हैं।

वह आदमी भागा हुआ हिंदुस्तान आया। हम कहेंगे, नासमझ था। आनंद में कितने लोगों ने ऐसी किताबें पढ़ीं, कभी कोई भाग कर कहीं जाता है? पढ़ लेते हैं, अपने घर बैठे रहते हैं। लेकिन उसको यह बेचैनी हो गई कि एक डाक्टर ऐसा लिखता है तो जरूर इसमें कोई मतलब होना चाहिए। वह बेचारा ऋषिकेश पहुंचा। वह बड़े भाव से भरा हुआ... उसने अपनी डायरी में लिखा है कि मैं इतना पागल हो गया कि अगर ऐसा कोई सूत्र मिल गया है कि जिसके पाठ से सारी बीमारियां दूर हो जाती हैं, तब तो दुनिया धन्य हो जाएगी। सब अस्पतालों की, मेडिकल कॉलेज.ज की इतनी दवा-दारू, इतना सब कुछ, सब बंद कर देंगे। एक छोटी सी तरकीब मिल गई है, सीक्रेट मिल गया है, यह तो बड़ा राज है, यह इस आदमी को तो नोबल प्राइज मिलनी चाहिए थी इसी वक्त। कहां छोटी-मोटी दवाइयां खोजने वालों को, फलां-ढिकां को तुम जाकर और नोबल प्राइज दे देते हो। जिस आदमी ने इतनी बड़ी बात निकाल ली है, इसको तो नोबल प्राइज अभी मिलनी चाहिए। वह भागा हुआ ऋषिकेश पहुंचा। उसने जाकर स्वामी शिवानंद के सेक्रेटरी को कहा कि मैं इसी वक्त मिलना चाहता हूं स्वामी जी से। सेक्रेटरी ने कहाः अभी नहीं मिल सकते, अभी स्वामी जी बीमार हैं और डाक्टर उन्हें इंजेक्शन लगा रहा है। वह आदमी तो भौचक्का खड़ा रह गया! स्वामी जी! उसने कहा, बीमार हैं? यह कभी नहीं हो सकता। यह कैसे हो सकता है? स्वामी जी कभी बीमार नहीं हो सकते। मैंने तो उनकी किताब पढ़ी है, जिसमें लिखा है कि ओम के पाठ करने से आदमी बीमारियों को जीत लेता है। उस सेक्रेटरी ने कहाः पढ़ी होगी किताब, लेकिन स्वामी जी बीमार हैं, और अभी डाक्टर देख रहा है, अभी आप नहीं मिल सकते।

हम कहेंगे, अगर हम होते वहां तो हम कहते, अरे पागल! तू समझता नहीं है, स्वामी जी लीला कर रहे हैं। यह तो लीला है, स्वामी जी थोड़े ही बीमार पड़ेंगे, यह तो लीला दिखला रहे हैं। भक्तों की जांच कर रहे हैं, कौन श्रद्धा रखता है, कौन अश्रद्धा रखता है। भक्तों की जांच कर रहे हैं स्वामी जी इस वक्त, बीमार नहीं हैं, लीला कर रहे हैं। और जांच कर रहे हैं कि कौन है सच्चा श्रद्धालु, जो अभी भी माने कि स्वामी जी स्वस्थ हैं, जो नहीं माने वह नास्तिक है। लेकिन वह डेनीज तो जैसे पहाड़ से गिर पड़ा। उसने अपनी किताब में लिखा है कि मैं तो दंग रह गया कि लोग कैसे हैं? किस मुद्दे पर लिखा है इस आदमी ने यह? लेकिन हम कोई भी नहीं कहेंगे, हमें कहेंगे कहां, इसमें क्या मुद्दे की बात है?

हमें ख्याल भी नहीं आएगा क्योंकि विचार तो हमने बंद ही कर दिया है, यह सब ख्याल दूसरों को आते हैं। जो विचार कर रहे हैं वे पूछना चाहते हैं, संदेह करना चाहते हैं, प्रयोग करना चाहते हैं, परीक्षण करना चाहते हैं, नतीजे निकालना चाहते हैं। हम सिर्फ घोषणाएं करते हैं। यह स्थिति देश में विचार को पैदा नहीं होने देती। और विचार पैदा नहीं होगा तो भारत का कोई भी भविष्य नहीं है। हम बहुत पिछड़ गए हैं, हम और पिछड़ते चले जाएंगे। हर दिशा में पिछड़ गए हैं। और पिछड़ने का एक ही कारण है कि हम कुछ पकड़े बैठे हैं हजारों साल से, कभी संदेह ही नहीं करते कि हम जो पकड़े बैठे हैं वह क्या है? आंख तो खोलो, देखो तो कि वह क्या है जिसे तुम पकड़े बैठे हो। लेकिन हमें डर लगता है कि अगर हमने सोच-विचार किया, तो कहीं ऐसा न हो कि हमारे पुरखे, हमारे ऋषि-मुनि गलत सिद्ध हो जाएं। तो चाहे हमारी जिंदगी नष्ट हो जाए, हमने एक कसम खा ली है कि अपने पुरखों को कभी गलत सिद्ध न होने देंगे। लेकिन पुरखों ने क्या कोई ठेका ले लिया है कि वह हमेशा के लिए सही हों? वह हमको हमेशा के लिए गलत कर गए हों और खुद हमेशा के लिए सही हो गए हैं। और मुर्दा, मर गए लोग अगर जिंदा लोगों को इस तरह फंसा दें, बहुत मुसीबत हो जाती है। जीना हमें है और वे जो कह गए हैं मानना उसे है। जिंदा हमें रहना है, जिंदगी से लड़ना हमें है, लेकिन उसूल उनके हैं; इस तरह नहीं चल सकता है आगे।

इसलिए पहली बात, भारत के दुर्भाग्य का बुनियाद हैः विश्वास, बिलीफ, अंधविश्वास। आंख बंद करके माने चले जाना सब दिशाओं में। वे दिशाएं कोई भी हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। इस दुर्भाग्य को तोड़ने का सूत्र हैः विश्वास नहीं--विचार, संदेह, सोचना। हमारी हालत भेड़-बकरियों जैसी हो गई है।

मैंने सुना है कि स्कूल में एक शिक्षक बच्चों को पढ़ा रहा था और वह उनसे कुछ सवाल पूछ रहा था गणित के। फिर उसने एक सवाल दिया बच्चों को कि एक छोटी सी बगिया में चार दिवारी के भीतर बीस भेड़ें बंद हैं, उसमें से एक भेड़ छलांग लगा कर बाहर निकल गई, तो भीतर कितनी भेड़ें बचीं? एक बच्चा एकदम हाथ हिलाने लगा, यह बच्चा कभी हाथ नहीं हिलाता था। शिक्षक ने पूछाः आज तुझे क्या हो गया है? उसने कहा कि मेरे घर में भेड़ें हैं, इसलिए मैं जवाब दे सकता हूं, एक भी नहीं बचेगी, सब निकल जाएंगी, पीछे एक भी नहीं बचेगी। आप कहते हैं न कि एक निकल गई। पीछे एक भी नहीं बची। उसने पूछाः मतलब क्या? पागल! बीस भेड़ें थीं, एक निकली है। उसने कहाः एक निकली होगी गणित में, भेड़ें सब निकल गईं, पीछे एक नहीं बच सकती। क्योंकि भेड़ें पीछे चलती हैं।

यही गणित भारत पर लागू होता है। इधर एक निकल जाए, फिर सारा मुल्क उसके पीछे चला जाए। जय-जयकार करता हुआ, जय महात्मा, जय महात्मा, झंडे हिलाता हुआ पीछे चला जाएगा। कोई नहीं पूछेगा कि ये भेड़ के पीछे क्यों चले जा रहे हो? अपने बल पर खड़े होना एक-एक आदमी को चाहिए। किसी के पीछे क्यों चले जा रहे हो? लेकिन हमें यह ख्याल ही नहीं आता। हमारे पास भी भीतर कोई बुद्धि भगवान ने दी है,

हम पर भी सोचने की चुनौती है। हमें भी सोचना है, क्यों पीछे चलें किसी के? लेकिन पीछे चलने में बड़ी सुविधा है। सोचने में श्रम करना पड़ता है, पीछे चलने में कुछ भी नहीं करना पड़ता। सोचने में इनकनविनियंस है, सोचने में थोड़ी तकलीफ होती है, सिर पर जोर डालना पड़ता है। पीछे चलने में मजे से चले जा रहे हैं। किसी की पूंछ पकड़े हुए हैं और आगे चले जा रहे हैं। और वह जो आगे है उसका भी हमें पता नहीं कि वह भी किसी की पूंछ पकड़े है, क्योंकि ऐसा हो ही नहीं सकता वह न पकड़े हो। क्योंकि उसके आगे अगर पूंछ खो जाए तो वह भी घबड़ा जाएगा कि अब मुझे सोचना पड़ेगा। हो सकता है जिंदों की पकड़े हो, मुर्दों की पकड़े हो, किसी न किसी की पकड़े होगा। एक कतार लगी है हजारों साल से।

बुद्ध ने कहा है कि एक दफा एक पहाड़ की तराई में मैं ध्यान करता था। दोपहर का वक्त था, एकदम मैंने देखा कि जंगल में बहुत हड़बड़ी मच गई, सारे जानवर भागे जा रहे हैं, भागे जा रहे हैं। थोड़ी देर तक तो वे आंख बंद किए ध्यान लगाने की कोशिश करते रहे, लेकिन फिर उन्हें हैरानी हुई कि ऐसा तो कभी भी नहीं हुआ था, पक्षी आकाश में उड़ रहे हैं, कतारबद्ध भाग रहे हैं; खरगोश, हिरण, शेर, हाथी, सब भागे जा रहे हैं। आखिर उन्होंने आंख खोली, एक शेर को रोका, लेकिन शेर भी रुकता नहीं है, कंप रहा है एकदम, पूछा, भई, बात क्या है? सारी जंगल की पूरी किंगडम, यह पूरा का पूरा जंगल का साम्राज्य कहां भागा जा रहा है? उस शेर ने कहाः मुझे मत रोकिए, प्रलय आने वाली है, हम बचने की कोशिश कर रहे हैं। तो बुद्ध ने कहा कि कहा किसने कि प्रलय आने वाली है? शेर ने कहाः आगे वाले लोगों ने कहा है। बुद्ध भागे आगे पहुंचे, दूसरे जानवरों से पूछा कि दोस्तो, कहां भागे जा रहे हो? उन्होंने कहा, महाप्रलय आ रही है, आपको पता नहीं, भागिए, बातचीत का वक्त नहीं है यह। पर बुद्ध ने कहाः कहा किसने है? उन्होंने कहाः आगे वालों ने कहा है। कहेगा कौन? जो आगे जा रहा है उन्होंने कहा।

बुद्ध भागते-भागते परेशान हो गए। हाथियों से पूछा, हिरणों से पूछा, लेकिन जिसने कहा, उसने कहा, आगे वाले ने कहा है। आखिर में सांझ होते-होते आगे जाकर खरगोशों की एक कतार मिली, जो सबसे आगे भागे जा रहे थे। पूछा कि दोस्तो, कहां भागे जा रहे हो? उन्होंने कहाः महाप्रलय आ रही है, रोकिए मत। कहा किसने है? उन्होंने कहाः जो खरगोश हमारे आगे है। आगे एक खरगोश भागा जा रहा था, छोटा सा खरगोश, उसे रोका, वह रुकता नहीं है, सब तरफ से भागने की कोशिश करता है, वह चिल्लाता है कि मुझे रोकिए मत। बुद्ध ने कहाः दोस्त, यह तो बता दे किसने तुझे कहा है? उसने कहाः किसी ने नहीं कहा, मैं एक झाड़ के नीचे आंख बंद करके सोया हुआ दोपहर का सपना देख रहा था, जोर का धड़ाका हुआ, और मेरी मां ने बचपन में मुझे कहा था कि जब ऐसा धड़ाका होता है तो महाप्रलय आ जाती है। मैं भागा, मैं भागा तो बाकी खरगोश भागे, बाकी खरगोश भागे तो सारा जंगल भागने लगा। बुद्ध ने कहाः तू किस झाड़ के नीचे सोता था, आम का झाड़ तो नहीं था? तो उसने कहाः आम का ही झाड़ था। बुद्ध ने कहाः पागल! कोई आम तो नहीं गिरा था? उसने कहाः यह भी हो सकता है। चल मेरे साथ!

उस खरगोश को लेकर झाड़ के पास गए वह जहां खरगोश बैठा था। उसका चिह्न बना था धूल में। पास एक बड़ा आम पड़ा था। जितना बड़ा खरगोश था उतना बड़ा आम! यही आम तो नहीं गिरा? उस खरगोश ने कहाः यह भी हो सकता है। लेकिन मेरी मां ने मुझसे बचपन में कहा था कि जब ऐसा धड़ाका होता है, तो महाप्रलय आती है। इसलिए मैं भाग गया।

बुद्ध अपने भिक्षुओं से बाद में कहते थे कि जंगल के जानवर भागते थे, यह तो हंसने जैसी बात नहीं, लेकिन मेरे पूरे मुल्क के लोग इसी तरह भाग रहे हैं। किसी से भी पूछोगे किसने? वह कहेगा, आगे वाले ने। वह

फलां महात्मा ने कहा है, फलां साधु ने कहा है, फलां उसने कहा है। पकड़ो उस साधु को, हमेशा वह आगे इशारा करेगा। और वहां तो बुद्ध ने खरगोश पकड़ ही लिया, यहां आगे किसी को भी पकड़ना मुश्किल है। क्योंकि आगे वाले लोग मर चुके हैं, कब्रों में कहां खोजिएगा? उनका कोई पता लगाना मुश्किल है, राख हो गए हैं वे। इसलिए आगे जाने का कोई उपाय नहीं कि पहला आदमी मिल जाए। और सब चीजों में यहशृंखला है। यहशृंखला तोड़ देनी चाहिए। जितनी जल्दी हम तोड़ दें, हम जो भी करते हैं उसका उत्तर हमारे विवेक के पास होना चाहिए, किसी दूसरे के विवेक के पास नहीं। मैं जो कर रहा हूं, जो कह रहा हूं, मेरे पास उत्तर होना चाहिए कि मैं क्यों कह रहा हूं? क्यों कर रहा हूं? अगर मैं यह कहता हूं कि दूसरे ने कहा है, तो मैंने मनुष्य होने की योग्यता खो दी। मैं डिसक्वालिफाइड हो गया उसी वक्त। उसी वक्त मेरे आदमी होने की बात खत्म हो गई। मैं आदमी नहीं हूं अब, और मैंने आदमी के तल से अपने को नीचे गिरा लिया। जैसे ही आप कहते हैं कि फलां आदमी ने कहा है इसलिए, फिरगलत बात हो गई। आपकी बुद्धि कहती है, आपका विवेक कहता है, गलत हो कोई फिकर नहीं, अपने विवेक से गलती करना भी शुभ है और दूसरे के विवेक से गलती से बच जाना भी अशुभ है। क्योंकि अपने विवेक से गलती करने वाला आज नहीं कल देख लेगा कि गलती है। अपना विवेक है उसके पास और गलती के पार हो जाएगा। लेकिन जो दूसरे के विवेक से चलता है वह कभी भी, कभी भी पार नहीं हो सकता। उसके पास जांच कसौटी कुछ भी नहीं है, उसके पास कोई मापदंड नहीं है।

भारत के पास व्यक्तित्व पैदा नहीं हो पाया विश्वास के कारण। इसलिए मैं कहता हूं विचार की फिकर करना, सोचना, किसी मुद्दे को बिना सोचे मत मान लेना। बड़ी तकलीफ होगी, बड़ा श्रम पड़ेगा, लेकिन श्रम से बचने के डर भी क्या हैं? और ध्यान रहे विचार की दुनिया में जितना श्रम किया जाता है, उतनी ही आनंद को आत्मा उपलब्ध होती है। विचार की दुनिया में जितना श्रम किया जाता है उतना मनुष्य परमात्मा के निकट पहुंचता है। शरीर की दुनिया में जितना श्रम किया जाए उतनी संपत्ति पैदा होती है। और विचार की दुनिया में जितना श्रम किया जाए उतना सत्य पैदा होता है। बाहर की दुनिया में जितना श्रम पैदा किया जाए उतनी समृद्धि पैदा होती है और भीतर की दुनिया में जितना श्रम किया जाए उतना सत्य पैदा होता है। सत्य एकमात्र शक्ति है। और जो विश्वास करते हैं उनके पास कोई शक्ति नहीं रह जाती, क्योंकि उनके पास सत्य ही नहीं है। उनके पास उधार बातें, शब्द हैं बारोड। बासे शब्दों से भरी हुई है हमारी खोपड़ी, इसलिए हम भटकते हैं, भरमते हैं, लेकिन कहीं पहुंचते नहीं। देश की पूरी नैया ऐसे ही चक्कर काटती रहती है कोल्हू के बैल की तरह। कोई किनारा नहीं मिलता हम कहां जाएं? यह स्थिति तोड़नी जरूरी है। और जैसे ही यह देश विचार करना शुरू करेगा, वैसे ही इस देश के भीतर पुरुषार्थ के अंकुर पैदा हो जाएंगे। जैसे ही विचार आएगा, पुरुषार्थ की किरणें छा जाएंगी। जैसे ही विचार आएगा, एक-एक आदमी को लगेगा कि बहुत कुछ करना जरूरी है। क्योंकि विचार करने की प्रेरणा बनता है। वह कहता है कि यह करो; यह हो सकता है। वह कहता है, यह करके देखो।

हिंदुस्तान में विज्ञान पैदा नहीं हुआ, क्योंकि विचार पैदा नहीं हुआ। विचार पैदा नहीं हुआ, विज्ञान कैसे पैदा होता? पश्चिम के मुल्कों में विज्ञान पैदा हुआ, वह भी हमेशा से नहीं था, अभी तीन सौ वर्षों में पैदा हुआ। जबसे आदमी ने वहां विचार करना शुरू किया, विज्ञान की धारा खुल गई। विज्ञान की धारा खुली पुरुषार्थ के प्राण खुल गए। आज उनका जवान, उनका आदमी चांद-तारों पर पैर रखने की योजना बना रहा है। और हम, हम इस जमीन से भी हट जाने की योजना बना रहे हैं। एक पैर हमारा कब्र में, एक पैर जमीन पर है, कब कोई धक्का दे देगा, हम जल्दी से कब्र में समा जाएंगे। हम कब्र में तैयारी कर रहे हैं प्रवेश की, वे चांद-तारों पर, वे आकाश के दूर यात्री बनने जा रहे हैं। जो किसी मनुष्य ने कभी नहीं जाना, वे जानेंगे। जो इतिहास में जहां

किन्हीं मनुष्यों के चरण नहीं पड़े, वहां उनके चरण पड़ेंगे। हमारे बेटे, हमारे बच्चे तरसेंगे बैठ कर, जमीन पर रहने का हक भी खो देंगे। लेकिन हम चुपचाप देख रहे हैं। हम कहते हैं, अरे! क्या करोगे चांद-तारों पर जाकर? क्या रखा है वहां? अपने गांव के हनुमान जी के मंदिर में बैठ कर भजन-कीर्तन करो। उससे बहुत फायदा होगा। इससे बड़ी आत्मिक शांति मिलती है। हम कहेंगे, क्या कर रहे हो तुम, किस दौड़-धूप में लगे हो? लेकिन परमात्मा उनके साथ है जो बाहर और भीतर श्रम में लगे हैं। परमात्मा उनके साथ है जो जीवन की चेतना को, भविष्य चेतना को विकास देने में लगे हैं। परमात्मा उनके साथ है जो एवोल्यूशन को, जो विकास को नये सोपानों पर पहुंचाने की कोशिश कर रहे हैं। परमात्मा उनके साथ है जो भविष्य को जीतने की तैयारी में हैं। परमात्मा मरते हुओं के साथ कभी भी नहीं है। हम राह की धूल बन कर खो जाएंगे। हम अभी भी राह के किनारे खड़े हो गए हैं।

इसका ध्यान रहे, जो जीवन की धारा चल रही है भारत उसमें राह के किनारे खड़ा हो गया है। जीवन की धारा का मुख्य अंग नहीं हैं हम। लेकिन हम किनारे पर खड़े होकर चिल्ला रहे हैं कि हम जगत गुरु हैं। दुनिया को हम शिक्षा देंगे, दुनिया हमारी तरफ देख रही है मार्गदर्शन के लिए। कौन देख रहा है तुम्हारी तरफ? राह के किनारे खड़े लोगों की तरफ कोई कभी देखता है? लेकिन तुम्हें लगता है, क्योंकि राह पर से लोग निकलते हैं तो उनकी नजर पड़ जाती है तुम्हारे ऊपर खड़े हुए। तुम सोचते हो सारे लोग हमारी तरफ नजर लगाए हुए हैं। वे आगे चले जा रहे हैं, कोई तुम्हारी तरफ नजर नहीं लगाए हुए है। हां, कोई-कोई झक्की उनमें पैदा हो जाते हैं और वे इधर आ जाते हैं--कोई बीटल आ जाएगा, कोई, कोई आ जाएगा, हम कहेंगे, धन्यवाद! देखो, भारत जगतगुरु है। दो-चार-दस पगलों को लाने से कोई भारत जगतगुरु हो जाएगा? यहां से कोई आदमी चला जाता है पश्चिम में, कोई महर्षि, कोई, कोई और, वहां दस-पच्चीस लोग उसके आस-पास चक्कर काटने लगते हैं, तो हम समझते हैं कि कोई भारत जगतगुरु हो गया।

यह सवाल नहीं है। ऐसे कोई जगतगुरु नहीं होता। हम जगत की धारा से ही विच्छिन्न हो गए हैं। लेकिन अक्सर ऐसा होता है, जिनके हाथ से सब खो जाता है, वह मन ही मन में बड़ी-बड़ी कल्पनाएं करके संतोष खोजने की कोशिश करते हैं। भिखारी रास्तों के किनारे बैठ कर सोचते हैं कि हमारे बापदादे सम्राट थे। जरूर सोचते हैं, भिखारियों के पास जाइए बराबर सोचते होंगे। भिखारी और कुछ नहीं सोचते, अपने पीछे का हिसाब लगाते हैं कि मैं ये था, और सपने में सभी भिखारी सम्राट हो जाते हैं। सपने में कोई भिखारी कभी भी भिखारी होने का सपना नहीं देखता, यह आपको पता है?

मैंने सुना है, एक झाड़ के नीचे बैठ कर एक बिल्ली सपना देख रही थी। एक कुत्ता वहां से निकलता था, उसने उसे जगाया और कहा कि क्या देख रही है? बड़ी रस ले रही थी। तेरे होंठों से लार टपक रही थी। और तेरी मूछें तू साफ कर रही थी। मामला क्या था, क्या देख रही थी? उस बिल्ली ने कहाः नाहक मेरा सपना तोड़ दिया। मैं देख रही थी कि वर्षा हो रही है और चूहे टपक रहे हैं, एकदम चूहे, चूहे... पानी नहीं है, चूहों की वर्षा हो रही है। सब गड़बड़ कर दिया। उस कुत्ते ने कहाः नादान बिल्ली, सपना भी देखा तो गलत देखा, मैं पुरखों से सुनता आया हूं कि कभी-कभी ऐसी वर्षा होती है, लेकिन चूहे नहीं बरसते, हड्डियां बरसती हैं, चूहे तो कहीं लिखे ही नहीं हैं। किसी शास्त्र में, किसी पुराण में नहीं लिखा है कि चूहे बरसते हैं, हड्डियां बरसती हैं। हम भी कभी-कभी सपने देखते हैं, हड्डियां गिरती हैं, चूहे नहीं गिरते। सपना भी देखा तो गलत सपना देखा।

लेकिन बिल्ली चूहे गिरने के सपने देख सकती है। कुत्ते हड्डी गिरने के सपने देख सकते हैं। यह भारत जगतगुरु होने के सपने देखता रहता है। जो हमारे पास नहीं है उसी के सपने देखे जाते हैं। जो होता है उसके

कोई सपने नहीं देखता। जो आज हैं गुरु की हैसियत में वे कहते नहीं फिरते। और जो हम आज दीन-हीन हो गए हैं तो हम कहते फिरते हैं, चिल्लाते फिरते हैं। यह सब चिल्लाना हमारी कमजोरी, यह सब चिल्लाना हमारे हारे हुए होने का सबूत। लेकिन कब बदलेगा यह भाग्य? कैसे बदलेगा यह भाग्य? यह थोड़ी सी बात मैंने कही, विचार की क्रांति चाहिए इस देश के प्राणों को झकझोर देने के लिए। सब विश्वास उखाड़ कर फेंक देने जैसे हैं। जीवन के प्रत्येक पहलू पर संदेह का द्वार खोला जाना चाहिए।

जिंदगी के हर मसले को फिर से रि-कंसीडर, फिर से पुनर्विचार किया जाना चाहिए। जिंदगी की कोई चीज चुपचाप मान लेने योग्य नहीं है। हजारों-हजार साल में जो कहा हो उसको फिर उठा कर पूछना पड़ेगा। फिर प्रश्न, फिर इंक्वायरी, फिर क्वेश्चनिंग, और हथौड़े की चोट पर हैमरिंग करनी पड़ेगी एक-एक चीज को, जो टिक जाएगी कसौटी पर उसको मान लेंगे, जो नहीं टिकेगी उसको फेंक देंगे, चाहे वह किन्हीं महात्माओं ने कही हो। किन्हीं ऋषियों ने कही हो, किन्हीं मुनियों ने कही हो। नहीं वह विचार की और तर्क की कसौटी पर कसी जानी चाहिए और अगर मुल्क यह हिम्मत कर लेता है, तो आगे दुर्भाग्य का कोई कारण नहीं है। आज तक हम अभागे थे, आगे भाग्य आ सकता है। मैं आशा से भरा हूं। यह हो सकता है। और यह भी हो सकता है कि आज तक हमने विचार नहीं किया, यह वरदान नहीं था, अभिशाप था। यह अभिशाप भी भविष्य में वरदान बन सकता है। जैसे किसी खेत को बहुत दिन तक खेती-बाड़ी न की गई हो, और वर्षों के बाद फिर कोई बीज उसमें डाल दे, तो फिर ऐसी फसल आए जैसी किसी खेत में नहीं आती। क्योंकि हजारों साल उस खेत में बहुत ऊर्जा इकट्ठी हो गई है, जो बीज को पकड़ ले तो फूल जाए।

हिंदुस्तान का मस्तिष्क, हिंदुस्तान की प्रतिभा हजारों साल से बंजर पड़ी है, उस पर खेती नहीं की गई है। कौन जाने, अगर आने वाले भविष्य में, आने वाले बच्चों ने हिम्मत की और उन्होंने विचार के बीज बोए, तो यह भी हो सकता है कि पृथ्वी पर कोई देश इस देश की प्रतिभा का मुकाबला न कर सके। क्योंकि हजारों साल की ऊर्जा निष्प्राण पड़ी है। वह अगर एकदम से फूट जाए, तो इस खेत में जितने फूल आएंगे, उतने शायद जमीन के किसी खेत में नहीं आ सकते। लेकिन हम करेंगे तो ही हो सकता है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

दूसरा प्रवचन

असंतोष मार्ग है क्रांति का

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक गांव में बहुत पुराना चर्च था। उस चर्च की दीवालें गिरने के करीब आ गईं थीं। उस चर्च के भीतर प्रवेश करने में भी मन को भय मालूम पड़ता था। वह चर्च कभी भी गिर सकता था, वह चर्च गिरने को ही था। आकाश में बादल गरजते थे, तो गांव के लोग समझते थे कि आज चर्च बचेगा नहीं। रात में बिजली चमकती थी तो लोग घरों के बाहर आकर देखते थे कि शायद चर्च गिर गया हो! ऐसे पुराने चर्च में कौन प्रार्थना करता, कौन आराधना करता? आखिर चर्च की कमेटी और पादरी लोगों से प्रार्थना कर-कर के थक गए, लेकिन लोगों ने चर्च में आना शुरू नहीं किया। फिर चर्च की कमेटी की बैठक हुई, वह बैठक भी चर्च के बाहर हुई, चर्च के भीतर नहीं। क्योंकि चर्च का पुरोहित और चर्च की कमेटी के लोग भी भीतर जाने की हिम्मत नहीं कर सकते थे। उन्होंने बाहर बैठ कर चार प्रस्ताव स्वीकार किए।

उन्होंने पहला प्रस्ताव स्वीकार किया कि हम बहुत दुख से स्वीकार करते हैं कि पुराने चर्च को गिराना आवश्यक हो गया है। दुख से, क्योंकि पुराने को गिराने में बड़ी तकलीफ होती है। दूसरा प्रस्ताव उन्होंने स्वीकार कियाः लेकिन हम शीघ्र ही एक नया चर्च बनाएंगे; लेकिन नया चर्च हम ठीक वैसा ही बनाएंगे जैसा पुराना है। हम पुराने चर्च की नींव को नहीं बदलेंगे। उसकी बुनियाद पर ही नया चर्च उठाया जाएगा। अब पुराने की नींव पर दुनिया में कभी भी नया निर्मित नहीं होता है। लेकिन उस चर्च की कमेटी ने तय किया कि हम पुराने की नींव पर ही नई दीवालें उठाएंगे। और उन्होंने यह भी तय किया कि पुराने चर्च की ईंटों का ही नये चर्च में उपयोग किया जाएगा, पुराने दरवाजे ही उपयोग किए जाएंगे, पुरानी खिड़कियां ही लगाएंगे, पुराने खपड़ों का ही हम इस्तेमाल करेंगे। पुराने चर्च की एक भी चीज नहीं खोएंगे, उसे नये में लगाएंगे। और पुरानी जगह पर, पुरानी नींव पर ही नया चर्च बनाना है। वह नाम को ही नया होगा, क्योंकि सब पुराना ही उसमें लगाना था। और चौथा प्रस्ताव भी उन्होंने पास किया कि जब तक नया न बन जाए, तब तक पुराने को गिराएंगे नहीं।

वह चर्च अब भी खड़ा है। वह चर्च कभी नहीं गिरेगा और नया कभी बनेगा नहीं। जैसी इस चर्च की कहानी है वैसी इस पूरे देश की कहानी है। यह पूरा देश इतना पुराना पड़ चुका है कि अब इस देश का मरना ही आसान है, जीना बहुत कठिन है। यह इतना सड़ चुका है, यह इतना गल चुका है, यह इतना सड़ और गल चुका है कि इसका मरना भी मुश्किल हो गया है। आपको पता है, मरने के लिए भी थोड़ी जिंदगी चाहिए होती है। मरे हुए आदमी नहीं मरते हैं, यह तो पता ही होगा? मरने के लिए भी जिंदगी चाहिए। ऐसा लगता है कि हम इतने मर चुके हैं कि अब हमने मरने की भी क्षमता खो दी। हमारा अस्तित्व एक प्रेत अस्तित्व है। और यह हजारों साल से ऐसा है। यह कोई आज ऐसा नहीं हो गया है। असल में हजारों साल हो गए, तब से ही हम भूल गए हैं कि नये को कैसे निर्मित किया जाता है? हजारों साल हो गए, तब से ही हम पुराने को छाती से लगाए बैठे हैं। हजारों साल हो गए, तब से ही हमने पुराने को इतना आदर, इतना प्रेम, इतनी श्रद्धा दी है कि नये का जन्म न मालूम कब से बंद हो चुका है? यह देश बहुत न मालूम कब बूढ़ा हो चुका, कब मर चुका?

और अब जब समाज में क्रांति की कोई भी बात उठती है तो सबसे बड़ी जो बाधा पड़ती है वह इस बात से पड़ती है कि हम इतने पुराने हैं, हम इतने जरा-जीर्ण हैं, हम इतने सड़ चुके हैं कि क्रांति भी करनी हो तो कहां

से करनी है? किस चीज को बदलें? सभी कुछ बदलने जैसा हो गया हो, कहां से हो शुरुआत? कैसे हो शुरुआत? इसलिए हजारों साल से इस देश में क्रांति नहीं होती, ज्यादा से ज्यादा सुधार होते हैं। कभी इस दीवाल को लीप-पोत कर ठीक कर लेते हैं, कभी उस दरवाजे पर रंग-रोगन कर देते हैं, कभी प्लस्तर गिर जाता है उसको ठीक कर देते हैं, कोई दीवाल गिरने लगती है तो आड़ लगा देते हैं। पुराने मंदिर को, पुराने चर्च को ही किसी तरह सम्हाल कर हम जी रहे हैं। इस देश की जिंदगी में अगर क्रांति लानी हो, तो पहला सूत्र आपसे कहना चाहता हूं, और वह यह, नये को जन्म देने का पहला सूत्र पुराने को छोड़ने की हिम्मत जुटाना है। और जो समाज पुराने को छोड़ने का साहस खो देता है, वह नये को जन्म देने की पात्रता भी खो देता है।

नये को जन्म देने की क्षमता उन्हीं में होती है जो पुराने को नष्ट करने की क्षमता भी रखते हैं। निर्माण की कला केवल उन्हें ही आती है जो विध्वंस की कला भी जानते हैं। हम विध्वंस की कला ही भूल गए हैं। हम मिटाना जानते ही नहीं। और ध्यान रहे कि जैसे ही हम मिटाना भूल जाते हैं, हम बनाना भी भूल जाते हैं। क्योंकि बनाने का पहला कदम सदा ही मिटाना है। पुराने को मिटाए बिना नये समाज का जन्म नहीं हो सकता। इसलिए पहली बात कहना चाहता हूं, पुराने का सम्मान कम करो, पुराने का आदर कम करो, पुराने का स्वागत कम करो। नये के स्वागत को बढ़ाओ, नये को सम्मान दो। नये को हाथ फैलाओ, नये का आलिंगन करो। लेकिन हम तो नये से भयभीत लोग हैं। नये से हम बहुत डरते हैं; क्योंकि नया होता है अपरिचित। अपरिचित का भरोसा नहीं होता, पुराना होता है परिचित। परिचित का भरोसा होता है। यहां तक हमारी हालतें हो गई हैं कि पुरानी बीमारी तक को छोड़ने में हमें कठिनाई होती है, क्योंकि वह परिचित मालूम होती है। पुरानी जंजीरें भी छोड़ने में कष्ट मालूम होता है, क्योंकि इतने दिन से हम उन्हें पहने हुए हैं कि वे जंजीरे हैं यह हम भूल गए हैं, हम इन्हें अलंकार, आभूषण समझ रहे हैं। और जब कोई समाज जंजीरों को आभूषण समझने लगे, और बीमारियों को संगी-साथी मान ले, तो फिर उसके भाग्य का कोई भी ठिकाना बताना मुश्किल है।

बेस्तिल का एक किला है फ्रांस में। फ्रांस में क्रांति हुई, तो क्रांतिकारियों ने जैसे ही फ्रांस की सत्ता पर कब्जा कर लिया, उन्हें ख्याल आया बेस्तिल के किले का। बेस्तिल के किले में फ्रांस के जघन्य अपराधियों को बंद किया जाता था। उन अपराधियों को जिनको आजीवन कैद की सजा मिलती। उस किले में ऐसे कैदी थे, जो तीस साल से बंद थे, चालीस साल से बंद थे। कुछ कैदी पचास साल से बंद थे। सत्तर और अस्सी साल उनकी उम्र हो गई थी। वे अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। उस कारागृह में जो बंद होता था, वह कभी छूटता नहीं था मरने के पहले; मरने पर ही छूटता था। उस कारागृह में जो जंजीरें डाली जाती थीं, उनको खोलने की कोई चाबी नहीं होती थी, वे तो मरने पर हाथ काट कर ही निकाली जाती थीं। कं्रातिकारियों ने उस किले को तोड़ दिया। और उन्होंने सोचा कि कैदी कितने खुश न हो जाएंगे, जब हम उन्हें मुक्त करेंगे। और उन्होंने जाकर कैदियों को जबरदस्ती उनकी अंधेरी कोठरियों से बाहर निकाला।

अब जो कैदी पचास साल अंधेरी कोठरी में रहा हो--आपको पता है, वह प्रकाश से भयभीत होने लगता है? वह अंधकार का आदी हो जाता है। उसकी आंखें प्रकाश को देखने की क्षमता खो देती हैं। जो कैदी पचास वर्ष से अकेले में बंद रहा हो, दूसरे आदमी की मौजूदगी उसे घबड़ाहट देने लगती है। जो आदमी पचास साल से बंद रहा होः वक्त पर खाना मिल जाता हो, वक्त पर सो जाता हो, उसे जिंदगी एक झंझट मालूम होने लगती है। जीने का उपक्रम भी उसे कठिन मालूम होने लगता है।

क्रांतिकारी जबरदस्ती कैदियों को बाहर निकालने लगे, कई कैदियों ने कहा कि हम बाहर जाने को राजी नहीं हैं, हम मजे में हैं। हम यह बात ही भूल गए हैं कि हम कैदी हैं। हमें यह सवाल ही समाप्त हो गया है कि हम कारागृह में बंद हैं। यह तो हमें अपना घर मालूम होना लगा है।

पचास साल तक कारागृह में कोई बंद हो तो कारागृह भी घर मालूम होने लगता है। अगर मालूम न हो तो जीना बहुत कठिन हो जाता है। मालूम करना पड़ता है। कारागृह को ही घर समझने की आदत डालनी पड़ती है। नहीं तो जीना बहुत मुश्किल है। लेकिन क्रांतिकारी क्रांतिकारी, उन्होंने जिद से जबरदस्ती लोगों को बाहर कर दिया। अब दुनिया में कहीं जबरदस्ती क्रांति होती है कि जबरदस्ती किसी आदमी को स्वतंत्र किया जा सकता है? किसी आदमी को न तो जबरदस्ती परतंत्र किया जा सकता है, जब तक कि उसकी आत्मा परतंत्र होने के लिए भीतर से राजी न हो, और न ही किसी आदमी को जबरदस्ती स्वतंत्र किया जा सकता है, जब तक कि वह स्वतंत्र होने के लिए आतुर न हो। और जो स्वतंत्र होने के लिए आतुर है, उसके शरीर को भला कोई परतंत्र बना ले, उसकी आत्मा को कोई कभी परतंत्र नहीं बना सकता। और जो परतंत्र होने के लिए उत्सुक है, उसके शरीर को भले हम स्वतंत्र कर दें, उसकी आत्मा कभी स्वतंत्र नहीं हो सकती। जबरदस्ती खींच कर निकाल दिया कैदियों को। उनकी जंजीरें तोड़ दीं। लेकिन एक अदभुत घटना घटी इतिहास की। ऐसी शायद कभी घटना नहीं घटी थी। सांझ होते-होते आधे कैदी वापस लौट कर अपनी कोठरियों में बैठ गए। और उन कैदियों ने कहा हम बाहर जाने से इनकार करते हैं, हम मर जाएंगे, लेकिन हम अपना कारागृह नहीं छोड़ सकते। दिन में हमें इतना बुरा लगा, जिसका कोई हिसाब नहीं। लोगों को देख कर डर लगता है, सूरज की रोशनी में आंख नहीं खुलती, और हाथ की जंजीरें तुमने छीन ली हैं तो ऐसा लगता है, जैसे हम नंगे-नंगे हैं, कोई चीज शरीर से कम हो गई। हम रात को सोएंगे कैसे? हम बिना हाथ के उस भारी वजन के सो नहीं सकते। उस वजन के आधार पर ही हम सोते हैं, हम उसके आदी हो गए हैं, हमारी जंजीरें हमें वापस चाहिए।

बेस्तिल के किले पर जो हुआ था, अगर हिंदुस्तान के आदमी की तरफ हम देंखे तो हमें लगेगा कि वह ठीक ही हुआ था, हिंदुस्तान के आदमी के साथ रोज वही हो रहा है। हम पुराने के इतने आदी हो गए हैं कि हमें ख्याल ही भूल गया है कि नया भी हो सकता है। कितनी है यह गरीबी हमारी पुरानी, कुछ पता है? हम जबसे हैं तबसे ही गरीब हैं। ये झूठी बातों में मत पड़ना कि दुनिया की कहानियों में लिखा हुआ है कि हिंदुस्तान सोने की चिड़िया है। ये कहानियां सरासर झूठी हैं। हिंदुस्तान सोने की चिड़िया है, लेकिन कुछ थोड़े से लोगों के लिए, सारे लोगों के लिए नहीं। कुछ थोड़े से लोग सोने की चिड़िया पर बहुत दिन से सवार हैं, लेकिन हिंदुस्तान, असली हिंदुस्तान हमेशा से भूखा, दरिद्र और दीन है। असली हिंदुस्तान कभी समृद्ध नहीं रहा। हजारों साल की गरीबी से धीरे-धीरे हम गरीबी के लिए राजी हो गए हैं। हमने यह ख्याल ही छोड़ दिया है कि हम भी समृद्ध हो सकते हैं। न केवल हमने यह ख्याल छोड़ दिया है बल्कि हमने एक फिलॉसफी, एक तत्वदर्शन विकसित कर लिया है कि गरीबी बड़ी ऊंची चीज है, समृद्धि लात मारने योग्य है। यह हद, यह हद चालाकी की बात है। यह गरीब आदमी की आखिरी सांत्वना, आखिरी कंसोलेशन है कि वह अमीरी को पाने योग्य ही न माने। वह कहे कि समृद्धि में क्या रखा है, सोना मिट्टी है। मिट्टी मिलती नहीं है देश को और सोना मिट्टी है! भूखे हम मरते हैं, भूखे हम मर रहे हैं हजारों वर्ष से, लेकिन हम यह ख्याल ही भूल गए हैं कि हम भरे पेट भी हो सकते हैं। इतने लंबे दिनों की गरीबी, गरीबी की आदत बना देती है। न केवल आदत बना देती है बल्कि गरीबी में भी एक तरह का सम्मान लेने की दृष्टि भी पैदा कर देती है।

हिंदुस्तान गरीब रहते-रहते गरीबी को सम्मान देने के दर्शन को भी विकसित कर लिया है। यह सबसे खतरनाक बात है जो हिंदुस्तान की जिंदगी को नहीं बदलने देती है। जब तक तुम गरीबी को सम्मान दोगे तुम्हारा गरीबी से ही भाग्य बंधा रहेगा। गरीबी से तुम कभी मुक्त नहीं हो सकते हो। जिसको हम सम्मान देते हैं वही हम हो जाते हैं।

हिंदुस्तान हजारों साल से गरीबी को ही सम्मान दे रहा है। समृद्धि को गालियां दे रहा है। और इस गाली के देने के पीछे एक बड़ा सहारा भी हिंदुस्तान को मिल गया, और वह सहारा क्या था? वह सहारा यह था कि हिंदुस्तान के तीन-चार हजार वर्षों के इतिहास में कुछ अमीरों के बेटों ने गरीबी को वरण किया। उनके गरीबी के वरण-कर्म ने हिंदुस्तान की गरीबी पर सील-मोहर लगा दी। महावीर राजा के लड़के हैं, बुद्ध राजा के लड़के हैं, जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के लड़के हैं, राम राजा के लड़के हैं, कृष्ण राजा के लड़के हैं। हिंदुस्तान के सब तीर्थंकर, हिंदुस्तान के सब अवतार, हिंदुस्तान के सब बुद्ध-पुरुष राज-पुत्र हैं। हिंदुस्तान में एक भी गरीब आदमी तीर्थंकर और अवतार आज तक नहीं हो सका, इसको ख्याल में रखना, इसको कभी भूल मत जाना। हिंदुस्तान के सारे भगवान राजाओं के लड़के हैं। और इसकी वजह से बड़ा उपद्रव हो गया, राजाओं के लड़के धन से ऊब जाते हैं, राजाओं के लड़के महलों से ऊब जाते हैं, राजाओं के लड़के जिंदगी के ऐश, विलास से ऊब जाते हैं। मनुष्य के मन का एक नियम है, और गरीब आदमी गरीबी से ऊब जाता है, अमीर आदमी अमीरी से ऊब जाता है। जो भी मिलता है आदमी उसी से ऊब जाता है। जो भी मिल जाए उसी से ऊब जाता है। जो लोग पैदल चलते हैं, वे कार में बैठे हुए लोगों को देख कर तरसते हैं। कार में बैठे हुए लोग पैदल चलने का मजा भी लेने की कोशिश करते हैं। अमीरों के लड़के अमीरी से ऊब गए। उन्होंने अमीरी को लात मार दी और भिखमंगे हो गए। उनके भिखमंगे होने से भारत की गरीबी पर सील-मोहर लग गई। भारत के गरीबों ने समझा कि जब अमीर तक लात मार कर गरीब हो जाते हैं, तो हम पर तो भगवान की बड़ी कृपा है कि हम पहले से ही गरीब हैं। हम किन्हीं पिछले जन्मों के पुण्य का फल भोग रहे हैं शायद कि हमको भगवान ने पहले से ही गरीब बनाया, धन्यवाद है भगवान का। क्योंकि जब गरीब होना ही पड़ता है, तो फिर गरीब पहले से ही होना बहुत अच्छा है। लेकिन पता नहीं है उनको कि अमीर आदमी जब गरीब होता है तो गरीबी में भी एक मजा आता है, अमीर आदमी के लिए गरीबी एक बदलाहट है, अमीर आदमी के लिए गरीबी भी एक मजा है।

मैं अभी बनारस में था। दो अमीर लड़के अमरीका से हिप्पी वहां आए हुए थे। वे मुझसे मिलने आए। वे करोड़पतियों के लड़के हैं। वे बनारस में नंगे पैर घूम रहे हैं और लोगों से दस-दस पैसे की भीख मांग कर अपना खर्च चला लेते हैं। मैंने उनसे पूछाः पागलो, तुम्हें क्या हो गया है? तुम दस-दस पैसे की भीख मांग रहे हो, गरीब मुल्क में खड़े होकर? तुम अमीरों के लड़के हो! उन हिप्पियों ने मुझसे क्या कहा? आपको क्या पता कि गरीब होकर कितनी स्वतंत्रता मालूम होती है? जहां तबीयत होती है वहां सो जाते हैं; न कोई फिकर है, न कोई डर है! भिक्षा मांग लेते हैं, न कोई संपत्ति को रखने का सवाल है, न हिफाजत का सवाल है। हम गरीब होकर पहली बार स्वतंत्रता अनुभव कर रहे हैं।

अब गरीब आदमी की समझ के बाहर हो जाएगा कि गरीब होकर कैसी स्वतंत्रता अनुभव की जाती है। जाकर अकालग्रस्त लोगों से पूछो कि अमीर लोग उपवास करके भी बड़ा आत्मिक आनंद अनुभव करते हैं। तुम भूखे मरते लोग, तुम्हें भी भूखे मरने में आनंद आता है कि नहीं? तो वे अकालग्रस्त लोग कहेंगे, हमारी समझ के बाहर है कि भूख में कैसे आनंद आ सकता है? लेकिन जिनके पेट बहुत भरे हों उन्हें कभी-कभी भूखे रहने में भी आनंद आता है। यह झूठ नहीं है। अमीर आदमी को, खाए-पीए आदमी को भूखे रहने में सुख मिलता है। लेकिन

गरीब आदमी इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। अमीर आदमी को गरीब होने में भी मजा आ सकता है, वह अमीर आदमी की आखिरी लग्जरी है, वह आखिरी विलास है। जब सब उसने पा लिया, और कुछ पाने को नहीं बचता, तब वह कहता है, अब हम गरीबी को भी पाकर रहेंगे। अब वह गरीब होने का भी मजा लेना चाहता है। गरीब होने का मजा सिर्फ अमीर ले सकते हैं।

मैं आपसे यह कहना चाहता हूं, सिर्फ अमीर गरीब होने का मजा ले सकते हैं। जिन्हें ज्यादा खाने को मिलता है, जो ओवरफेड हैं, वे उपवास और अनशन का मजा भी ले सकते हैं। जिनके पास बहुत वस्त्र हैं, वे नंगे खड़े होने का मजा भी ले सकते हैं। लेकिन जिनके पास कुछ नहीं है, उनकी कल्पना के बाहर है, सपने के बाहर है यह सब। लेकिन भारत के कुछ अमीर बेटों ने अमीरी को लात मार कर भारत के गरीबों को बड़ा सुख दिया। उनके मन को यह लगा कि बड़े अच्छे हैं हम, बड़ा भाग्य है हमारा। और भारत में गरीबी सम्मानित हो गई।

भारत में गरीबी को जिस दिन से सम्मान मिलना शुरू हुआ, उसी दिन से हमने समृद्ध होने की चेष्टा छोड़ दी है। हमारी आत्मा की वह ऊर्जा जो संपत्ति को पैदा करती है, सिकुड़ गई। हमारी आत्मा की वह ऊर्जा जो फैलाव को, विस्तार को आनंद अनुभव करती उसने संकोच कर लिया। हम मान कर राजी हो गए कि जैसे हम हैं वे ठीक हैं। और हमने संतोष का एक दर्शन विकसित कर लिया।

हिंदुस्तान जब तक संतोष के दर्शन को पकड़े बैठा है तब तक हिंदुस्तान के दुर्भाग्य में बदलाहट नहीं हो सकती। संतोषी लोग क्रांति करते हैं? संतोष कैसे क्रांति कर सकता है? संतोष से ज्यादा क्रांति-विरोधी और कोई विचार नहीं है। जब हम संतुष्ट हो जाते हैं, तो कं्राति का क्या सवाल है? परिवर्तन का क्या सवाल है? और हिंदुस्तान के सारे साधु-संत, हिंदुस्तान के सारे महात्मा सारे मुल्क को यह समझाते फिरते हैं कि संतुष्ट रहो, जैसे हो उसमें संतुष्ट रहो, और भगवान को धन्यवाद दो। तो हिंदुस्तान धीरे-धीरे संतुष्ट हो गया है--गरीबी में, गुलामी में, दीनता में, सड़ेपन में, अग्लीनेस में, कुरूपता में। हम सबमें संतुष्ट हो गए हैं। हम संतुष्ट हो गए हैं और मर गए हैं। मरना हो तो संतोष से अच्छी कोई दवा नहीं है। मरने का रामबाण उपाय है--संतोष। और यह संतोष क्यों हमें सिखाया गया है, क्योंकि गरीबी इतनी बड़ी थी, इस गरीबी के साथ जिंदा रहने की एक ही तरकीब थी कि हम संतुष्ट हो जाएं। या एक दूसरी तरकीब थी कि गरीबी को हम मिटा दें और धन को पैदा कर लें। धन आसमान से नहीं बरसता है। धन पैदा करना पड़ता है। धन मनुष्य की ईजाद है, यह ख्याल रहे। धन प्रकृति में नहीं मिलता, प्रकृति में केवल धन को पैदा करने के अवसर होते हैं, धन आदमी पैदा करता है। धन ह्यूमन इनवेंशन है। धन जो है वह मनुष्य का आविष्कार है। धन कहीं पड़ा हुआ नहीं है। धन हमें निर्मित करना होता है।

अमरीका को तीन सौ वर्ष हुए। तीन सौ वर्ष पहले भी अमरीका में लोग रहते थे। इसी अमरीका में, इसी भूमि में, लेकिन वे हमेशा गरीब रहे। उनके जीवन की फिलॉसफी अमीर होने की नहीं थी। तीन सौ वर्षों से जो लोग अमरीका में हैं, उन्होंने धन के अंबार लगा दिए। पृथ्वी पर इतना धन कभी किसी एक देश में पैदा नहीं हुआ था। यह धन कहां से आ गया? अगर हिंदुस्तान के आदमियों को अमरीका में बसा दो, अमरीका भी गरीब होगा। वह कसूर, वह कसूर अमरीका के आदमी का है कि उसने धन पैदा कर लिया। हम कभी धन पैदा नहीं करेंगे।

एक जर्मन यात्री भारत से वापस लौटा, उसका नाम है, काउंट कैसरलिंग। उसने अपनी डायरी में एक शब्द लिखा, मैं पढ़ता था तो मैं बहुत हैरान हो गया। मेरी समझ के बाहर हो गया कि क्या लिखा है उसने? सोचा कि शायद छापेखाने की कोई भूल हो गई। लेकिन फिर मुझे ख्याल आया कि किताब जर्मनी में छपी है,

वहां छापेखाने की भूल नहीं होती। वह तो छापेखाने की भूल हमारे ही मुल्क में होती है। और हमारे मुल्क में किताब छपती है तो किताब के पहले पांच-सात पन्ने लिखे रहते हैं--भूल सुधार। और अगर उन पांच-सात पन्नों को भी गौर से देखो तो उनमें भी भूलें मिल जाएंगी। लेकिन यह किताब तो जर्मनी में छपी है, इसमें भूल नहीं हो सकती। कोई कौम बरदाश्त नहीं कर सकती कि किताबों में भूल हो। जब चित्त में भूलें होती हैं तो किताबों में भूलें आती हैं। किताबें तो हमारे चित्त का लक्षण हैं। सारी जिंदगी हमारे चित्त का लक्षण है। जो कौम कोशिश करती है कि सब ठीक हो, व्यवस्थित हो, उसकी किताब में भूल कैसे होगी? फिर इस किताब में गड़बड़ दिखाई पड़ती है। फिर मैंने बार-बार उसके वाक्य को पढ़ा, फिर मुझे उसकी मजाक समझ में आई कि वह मजाक कर रहा है, भूल नहीं हुई है। उसने एक वाक्य लिखा है कि मैं हिंदुस्तान से लौटा हूं, और हिंदुस्तान के बाबत एक बात मेरे मन में रोज-रोज गूंजती रही है और वह यह कि इंडिया इ.ज ए रिच कंट्री, व्हेयर पुअर पीपल लिव। हिंदुस्तान एक अमीर देश है, जहां गरीब आदमी रहते हैं। मैंने कहाः यह कैसे हो सकता है? अगर देश अमीर है, तो गरीब आदमी कैसे रह सकते हैं? और अगर गरीब आदमी रहते हैं, तो देश अमीर कैसे हो सकता है? ये दोनों बातें उलटी हैं। लेकिन फिर उसका मजाक ख्याल में आया कि वह हम पर मजाक कर रहा है। वह यह कह रहा है कि लोग अगर बुद्धिमान होते और अमीर होना चाहते, तो देश तो अमीर था और लोग अमीर हो सकते थे, लेकिन लोग बुद्धिहीन हैं और गरीब रहना चाहते हैं। इसलिए देश तो अमीर है लेकिन देश क्या कर सकता है? जबरदस्ती अमीर तो नहीं बना सकता है हमें।

पांच हजार वर्षों में हमने कौन सी टेक्नालॉजी विकसित की? कौन सा तकनीक विकसित किया जिससे धन पैदा हो? हमने कौन सी मशीनें ईजाद कीं जिनसे धन पैदा हो? हमने मनुष्य के समाज को कौन सी ऐसी गठन और रचना दी जिससे धन पैदा हो? हमने धन पैदा करने का कोई उपाय नहीं किया। हमने निर्धनता को स्वीकार कर लिया। हमने मान लिया जैसा था। उसको मान लिया कि यही अंत है, यही सब कुछ है। हम विकास करने वाली कौम नहीं हैं। हम जड़ कौम हैं। जो मिल जाता है उसी को मान कर राजी हो जाते हैं कि ठीक है। पानी बरस जाता है तो भगवान को धन्यवाद दे देते हैं, नहीं बरस जाता तो थोड़े नाराज हो जाते हैं और बात खत्म हो जाती है। लेकिन हम भी पानी बरसा सकते हैं, यह हमारे ख्याल के बाहर है। हम भी कुछ कर सकते हैं, यह तो तभी सवाल उठेगा जब हम कुछ करना चाहते हों, लेकिन संतोष हमें कुछ करने ही नहीं देता।

गरीबी स्वीकृत है संतोष की छाया में। कैसे होगी क्रांति? कैसे होगा रूपांतरण? कैसे होगा नये का जन्म? पुराने को छाती से लगा कर हम संतोष कर रहे हैं। क्या आपको पता है, पुराना वृक्ष मर जाता है, नये बीजों को जन्म देकर? पुराना आदमी विदा हो जाता है नये बच्चों को जन्म देकर। पुराने पत्ते गिर जाते हैं, ताकि नये पत्ते पैदा हो सकें। लेकिन हमारी समाज की धारणाएं, पुरानी धारणाएं न मरती हैं, न हटती हैं, न विदा होती हैं; नये के लिए अवकाश नहीं, स्पेस नहीं। नये का अंकुर जहां से फूट सके, उसकी कोई गुंजाइश नहीं। उसके लिए कोई मौका नहीं, कोई अवसर नहीं।

नहीं, पुराने से असंतुष्ट होना पड़ेगा। जो है उससे असंतुष्ट होना पड़ेगा, तब हम उसे पैदा कर पाएंगे जो होना चाहिए। जो है उससे असंतुष्ट होना जरूरी है, ताकि वह पैदा किया जा सके जो होना चाहिए। लेकिन कोई सिखाता है हमें कि हम असंतुष्ट हो जाएं? छोटे से बच्चों तक को हम कहते हैं, संतुष्ट रहो, संतोष में बड़ा सुख है। संतोष में सुख नहीं है। सुखी आदमी में संतोष होता है। यह फिर से मैं दोहराऊं, हमें समझाया जाता है, संतोष में सुख है, यह गलत है, यह बिल्कुल झूठ है। संतोष में कोई सुख नहीं है। लेकिन सुख में जरूर बहुत संतोष है।

सुख हो तो एक संतोष की छाया जीवन में छा जाती है। लेकिन सुख न हो, जीवन में दुख हो, तो आदमी संतोष करके किसी तरह अपने को समझा कर दुख को छिपा लेता है। सुखी नहीं हो जाता।

मैं एक संन्यासी के पास गया। कोई दस-पचास लोग वहां इकट्ठे थे। संन्यासी ने मुझसे कुछ बातें कीं और फिर कहा कि मैंने एक गीत आज बनाया है, वह आपको सुनाता हूं, शायद आपको पसंद आ जाए। उन्होंने वह गीत गाया। उस गीत का मतलब... उस गीत को सुन कर वहां बैठे हुए पचास सिर एकदम खुशी से हिलने लगे और वाह-वाह करने लगे। मैं तो बहुत हैरान हुआ। उस गीत का मतलब क्या था? उस गीत का मतलब था कि संन्यासी एक सम्राट को उस गीत में कह रहे हैं कि तुम रहो अपने स्वर्ण के सिंहासनों पर, हम लात मारते हैं तुम्हारे स्वर्ण-सिंहासन पर। हमें कोई मतलब नहीं तुमसे, तुम्हारे स्वर्ण-सिंहासनों से। हम तो अपनी धूल में संतुष्ट हैं, हम तो अपनी धूल में मग्न हैं। मैंने उनसे कहा कि आपने कभी सुना किसी सम्राट ने यह गीत लिखा हो कि मग्न रहो तुम अपनी धूल में, लात मारते हैं तुम्हारी धूल पर हम, हम अपने स्वर्ण-सिंहासन पर बड़े आनंद में हैं? हम फिकर नहीं करते तुम्हारी धूल की? कभी किसी सम्राट ने यह नहीं लिखा। लेकिन संन्यासी बार-बार यह क्यों लिखते हैं? यह कहीं मन को समझाने की तरकीबें तो नहीं हैं? स्वर्ण-सिंहासन पूरी तरह दिखाई पड़ रहा है, अपने मन को समझाने के लिए गालियां दे रहे हैं आप कि लात मारते हैं तुम्हारे स्वर्ण-सिंहासन पर। अगर स्वर्ण-सिंहासन बेकार है तो लात मारने का कष्ट किसलिए कर रहे हैं? और अगर अपनी धूल में मजे में हैं, तो स्वर्ण-सिंहासन पर बैठे हुए लोगों को ईर्ष्या करने दो, अपने मुंह से क्यों अपनी धूल की प्रशंसा कर रहे हो? लेकिन धूल में पड़े हुए लोग संतोष खोजते हैं कि हम अपनी धूल में मजे में हैं। यह संतोष दुख को छिपाने का उपाय है, यह दुख को मिटाने की तरकीब नहीं है। अब दुख मिटाना है, छिपाना नहीं है।

संतोष दुख को छिपाता है, मिटाता नहीं। और जो समाज संतोष के माध्यम से दुख को छिपाता जाता है, धीरे-धीरे सैकड़ों वर्षों में इतने दुख इकट्ठे हो जाते हैं कि सारी आत्मा दुख से और घाव से भर जाती है। जैसा कि इस देश के साथ हुआ है। हम हमेशा दुख को छिपाते हैं, हम दुख को मिटाते नहीं। दुख को छिपाना है तो संतोष की चादर ओढ़ लेते हैं। संतुष्ट हो जाते हैं। अगर आदमी पच्चीस साल में मर जाता है तो संतुष्ट हो जाते हैं कि इतनी ही उम्र रही होगी, भाग्य में लिखी। अगर आदमी अंधा पैदा होता है, तो संतुष्ट हो जाते हैं कि पिछले जन्म में कोई दुष्कर्म किए होंगे, इसलिए बेचारा अंधा हो गया। अगर गरीबी बढ़ती है, तो हम मानते हैं कि पिछले जन्म में जिन्होंने पाप किए हैं वे लोग बेचारे गरीबी का दुख उठा रहे हैं। लेकिन किसी भी तरकीब से हम संतुष्ट हो जाते हैं और राजी हो जाते हैं। बगावत नहीं है, विद्रोह नहीं है, बदलाहट की आकांक्षा नहीं है। और वह नहीं है इसलिए कि असंतोष नहीं है।

संतुष्ट समाज क्रांतिकारी समाज नहीं होता है। जीवन में जलती हुई असंतोष की आग चाहिए। असंतोष की आग जीवित होने का लक्षण है। वह जो फायर, वह जो आग है असंतोष की, वह जिंदा आदमी का सुबूत है। मरा हुआ आदमी संतुष्ट होता है। जिंदा आदमी रोज नये से नये शिखर को छूने को आतुर होता है। रोज नये मार्गों पर चलने को, रोज नये विस्तार को, रोज नये अभियान को; जिंदगी के आखिरी क्षण तक भी वह नये को पाने की चेष्टा में रत होता है। असंतोष, डिस्कंटेंट, दिव्य लक्षण है, डिवाइन है।

मैं तो कहता ही हूं कि डिवाइन डिस्कंटेंट, दिव्य असंतोष मनुष्य को परमात्मा की सबसे बड़ी देन है कि मनुष्य को वह पीड़ित रखता है कि बढ़ो, और बढ़ो, और आगे, और आगे, जिंदगी कहीं खत्म नहीं होती। जिंदगी और-और आगे बढ़ती चली जाती है। लेकिन हम... हमने जिंदगी का साथ बहुत दिन पहले छोड़ दिया। हम रास्ते के किनारे बैठ गए हैं। जिंदगी का कारवां बढ़ा जाता है, हम रास्ते के किनारे बैठे हैं। जिंदगी की उड़ती धूल भी

हमारे सिर पर पड़ती है, उसी को आंख बंद करके झेलते रहते हैं, और कहते हैं, संतुष्ट रहना चाहिए, संतोष में बड़ा सुख है। संतोष दुख को छिपाने की तरकीब है, संतोष एस्केपिज्म है, संतोष पलायनवाद है। जिनको जिंदगी से भागना है, उनके लिए ठीक है कि आंख बंद कर लें और संतुष्ट हो जाएं। लेकिन जिन्हें जिंदगी जीनी है, उनके लिए संतुष्ट हो जाना ठीक नहीं है। और अगर पूरा समाज ही संतुष्ट हो जाए, तब तो आत्मघात हो गया, सुसाइड हो गया।

पूरा समाज संतुष्ट हो गया है। कोई चीज हमें पीड़ित नहीं करती। एक आदमी सड़क पर भीख मांगता है और हमारे प्राणों में कोई चोट नहीं पड़ती! क्या हमारे भीतर आदमी बिल्कुल मर गया है? सड़क पर एक आदमी गंदे कपड़े पहने हुए बैठा है और भीख मांग रहा है, हम उसके सामने से निकल जाते हैं, कहीं भी कोई चोट नहीं पड़ती इस आदमी की! हमारे प्राणों पर कहीं कोई चोट नहीं पड़ती! हमने स्वीकार कर लिया है कि यह सब है। जिंदगी में यह सब होता है। यहां फूल भी हैं और कांटे भी हैं। यहां दुख भी है और सुख भी है। यहां अमीर लोग भी हैं और भिखमंगे भी। हमने सब स्वीकार कर लिया है। जिंदगी कितनी ही कुरूप हो, जिंदगी कितनी ही बेहूदी हो, जिंदगी कितनी ही असंगत हो, जिंदगी कितनी ही अस्वीकार के योग्य हो, हम चुपचाप उसको देखते हुए निकल जाते हैं। क्या हमारे भीतर चोट खाने की क्षमता ही खो गई है? खो गई है।

संतुष्ट आदमी में सब क्षमता खो जाती है। और फिर संतोष सिखाता है कि कभी अपनी चादर से आगे पैर मत फैलाना। संतोष कहता है, अपनी चादर के भीतर रहना। अगर चादर छोटी पड़ जाए, तो पैर सिकोड़ लेना भीतर, लेकिन चादर बड़ी करने की कोशिश मत करना। पैर बाहर मत फैलाना। चादर के भीतर रहना समझदार आदमी का लक्षण है।

अब मैं आपसे कह देना चाहता हूं कि चादर अपने आप नहीं बढ़ती और आप अपने आप बढ़ते चले जाते हो, तो चादर रोज छोटी पड़ती चली जाती है और आप बड़े होते चले जाते हो। अब सुकड़-सुकड़ कर जान निकली जाती हैः कभी हाथ उघड़ जाता है, कभी पैर उघड़ जाता है, कभी पीठ उघड़ जाती है, कभी सिर उघड़ जाता है। चादर बिल्कुल छोटी हो गई है। जैसे किसी छोटे बच्चे को पाजामा पहना दिया हो। अब वह बच्चा तो जवान हो गया और पाजामा वही पहने हुए है। अब उसकी हालत आप समझते हो, उससे तो बेहतर है कि वह नंगा खड़ा हो जाए, तो भी थोड़ी स्वतंत्रता मालूम पड़ेगी। लेकिन यह पाजामा बचपन का जान ले रहा है। और पाजामे को छोड़ता भी नहीं, क्योंकि बापदादाओं का पहनाया हुआ पाजामा है, छोड़ा कैसे जा सकता है? पुरखे पहना गए हैं। अब अगर वे ही वापस लौट कर उतारें, तो उतार भी सकते हैं, हम कैसे उतार सकते हैं? वे लौटने वाले नहीं, क्योंकि वे लौटने के बाहर जा चुके हैं। अब वहां से लौटना नहीं होता। पाजामा वे पहना गए हैं। और आदमी बड़ा होता जा रहा है और छोटा पाजामा है। और हमको सिखाया यह गया है कि चादर के बाहर पैर मत पसारना। और आदमी बड़ा होता चला जाता है।

बुद्ध के जमाने में हिंदुस्तान की आबादी थी दो करोड़। तब उन्हें सिखाई गई थी यह बात कि चादर जितनी हो उतने ही पैर सिकोड़ना। बुद्ध को भी पता नहीं होगा कि चादर के भीतर का आदमी बहुत खतरनाक है, यह बहुत बड़ा हो जाएगा। अब इतना विस्तार हो गया है उस आदमी का कि उस चादर का पता ही नहीं चलता कि वह कहां है जिसके नीचे हम हैं। पाकिस्तान बंटा, तो ऐसा लगता था कि जिन्ना ने हमसे बड़े आदमी छीन लिए। अब जिन्ना की आत्मा समझती होगी कि हमसे आदमी छीनना बहुत मुश्किल है। बीस साल में हमने पाकिस्तान से दुगुने आदमी फिर पैदा कर लिए। हम एक ही उत्पादन का काम करते हैं। हम चीजें पैदा नहीं करते। हम कोई मैटीरियलिस्ट हैं? हम कोई भौतिकवादी हैं जो चीजें पैदा करें? हम अध्यात्मवादी समाज हैं,

हम सिर्फ आदमी पैदा करते हैं। आध्यात्मिक समाज नई-नई आत्माओं को पैदा करता है। वह सब भौतिकवादी लोग नई-नई चीजें पैदा करते हैं। चीजों से क्या फायदा है, आदमी पैदा करने चाहिए, आदमी असली चीज है। हम असली चीज पैदा करते हैं। दूसरे मुल्कों में लोग फिजूल की चीजें पैदा करते हैं, जिनसे कोई फायदा नहीं है।

लेकिन वह आदमी बड़ा होता चला जाता है और चादर छोटी होती चली जाती है। और फिलासफी यह है कि चादर बड़ी मत करना। और फिलासफी यह है कि चादर के बाहर पैर ही मत निकालना। अब बड़ी जान निकली जाती है।

मैं आपसे कहता हूं कि जो लोग चादर के बाहर पैर निकालते हैं, उन लोगों को चादर बड़ी करने के उपाय भी करने पड़ते हैं। क्योंकि पैर बहुत दिन बाहर नहीं रखे जा सकते, चादर बड़ी करनी ही पड़ेगी। इसलिए अगर चादर बड़ी करनी हो, तो पैर हमेशा बाहर निकालना, ताकि चादर को बड़ा करने का ख्याल पैदा हो। और अगर पैर भीतर ही रखे, तो चादर को बड़ा करने का ख्याल पैदा नहीं होगा।

और ध्यान रहे, चादर बड़ी की जा सकती है, चादर कितनी ही बड़ी की जा सकती है। जमीन के पास इतनी संपत्ति है कि अभी दुनिया में तीन, साढ़े तीन अरब आदमी हैं, अगर दुनिया में तीस अरब आदमी भी हों, तो जमीन पर किसी आदमी के भूखे मरने का कोई कारण नहीं है। जमीन पर इतनी संपदा है, और जमीन पर इतनी संपदा के अछूते, कुंवारे स्रोत हैं अभी--अभी समुद्र पड़ा है, जिससे इतना भोजन पैदा किया जा सकता है कि करोड़ों-अरबों लोग भोजन करें और कोई अंतर न पड़े। अभी पूरी हवाएं पड़ी हैं, हवाओं से इतना भोजन खींचा जा सकता है कि अरबों लोग जीएं और कोई तकलीफ न हो। अभी सिर्फ जमीन जोती गई है, न तो अभी समुद्र जोता गया है, न हवाएं जोती गई हैं, अभी बहुत अनजोते खेत पड़े हुए हैं। लेकिन कौन जोतेगा उनको? वे जो कहते हैं कि चादर के बाहर पैर मत निकालना... चादर के बाहर पैर निकालने चाहिए, ताकि जिंदगी को विस्तार मिलने की दिशा में गति आ सके, ताकि जिंदगी में क्रांति और रूपांतरण हो सके।

तो आज तो एक ही सूत्र पर मैं जोर देना चाहता हूं, संतोष आत्मघाति है। संतोष दरिद्रता में जीना सिखाता है। संतोष गुलामी में जीना सिखाता है। एक हजार साल तक हम गुलाम रहे, यह बड़ा चमत्कार है इतिहास का। दुनिया में कोई कौम एक हजार साल तक गुलाम नहीं रही है और न रह सकती है। एक हजार साल तक गुलाम रहने का मतलब आप समझते हैं क्या होता है? एक हजार साल तक गुलाम रहने का मतलब यह होता है कि हमारे भीतर स्वतंत्र होने की कोई कामना ही नहीं है। एक हजार साल तक गुलाम हमें रखा जा सकता है, उसका मतलब यह है कि हम स्वतंत्र होना ही नहीं चाहते। और हम क्यों स्वतंत्र होना चाहें? हमारे शास्त्रों में लिखा है। कोई हो राजा, हमें क्या मतलब है? कोई हो नृप, हमें क्या हानि? कोई हो राजा, हमें क्या मतलब है? हम अपना राम-भजन करते रहेंगे, अपनी-अपनी मढ़ियाओं में बैठ कर कीर्तन करते रहेंगे। राजा से हमें क्या लेना-देना है? कोई भी हो! जब ऐसी बातें सिखाई जाती हैं समाज को, तो समाज किसी भी स्थिति में रहने को राजी हो सकता है। एक हजार साल तक हम गुलाम रहने को राजी हो गए। और यह मत सोचना कि अभी आप और हम अपनी ताकत से आजाद हो गए हैं, अगर हम पर ही छोड़ दिया जाता आजाद होना, तो हम कभी इस झंझट में न पड़ते आजादी के, हम गुलाम ही रहे आते। वह तो अंग्रेज बड़े अजीब लोग थे, और न माने और हमको आजाद कर ही गए। अन्यथा हमारी कोई तैयारी न थी। हमने क्रांति की थी उन्नीस सौ बयालीस में और आजादी मिली उन्नीस सौ सैंतालीस में। ऐसा कहीं सुना है कि क्रांति हो पांच साल पहले, आजादी मिले पांच साल बाद। गोली मारी जाए अभी और लगे पांच साल बाद। ऐसा कभी सुना है? और वह गोली भी बड़ी पोच थी, उसमें भी कोई आवाज नहीं हुई थी, कुछ भी नहीं हुआ था।

हिंदुस्तान के एक नेता को भी पता नहीं था कि हम आजाद होने वाले हैं। आजादी बिल्कुल आकस्मिक घटना की तरह हमारी छाती पर सवार हो गई। हम चौंक गए, हम इतने गुलामी से न चौंके थे जितने हम आजादी से चौंके। और हम गुलामी से इतनी परेशानी में न पड़े थे जितने बीस साल से हम आजादी में पड़े हैं। यह तो आप देख ही रहे हैं। यह आजादी बड़ी अजनबी है हमारे मन को, यह हमारे मन की मांग नहीं, यह हमारे चित्त की आकांक्षा नहीं। आजाद होने के लिए भी बड़े असंतोष लोग चाहिए।

दूसरे महायुद्ध में, मैंने सुना है, जर्मनी ने तय किया था हालैंड पर हमला करने के लिए। हालैंड गरीब देश है। हमारे जैसा गरीब नहीं। गरीबी से यह मतलब नहीं होता जैसे हम गरीब हैं। पश्चिम में गरीबी का भी वही मतलब होता है जो हमारे यहां साधारणतः अच्छे खाते-पीते लोगों का होता है। पश्चिम, हालैंड अमीर देश नहीं है बहुत। उसकी तकलीफ है कि उसके समुद्र का पानी ऊंचा है जमीन से। और चारों तरफ मुल्क में दीवालें उठा कर समुद्र के पानी को रोकना पड़ता है कि जमीन डूब न जाए। तो आधी ताकत देश की इसी में लग जाती है। और जब जर्मनी ने तय किया कि हालैंड पर हमला करेगा। तो हालैंड मुसीबत में पड़ गया। हालैंड को सोचना पड़ा। उसके पास फौजें नहीं हैं जर्मनी से लड़ने के लायक। हम क्या करेंगे? क्या हम गुलाम हो जाएं? अगर हम होते, तो हम कहते, यह तो बहुत ही सुअवसर है, इसको क्यों चूकते हो? अपनी झंझट छोड़ो, कोई दूसरा रिस्पांसिबिलिटी लेता हो, गुलामी में एक फायदा है, अपनी कोई झंझट नहीं रहती, दूसरे लोग झंझट करते हैं। वे फिकर करते हैं। हमारी झंझट नहीं रहती। हमको चिंता भी नहीं करनी पड़ती। गुलामी के बड़े मजे हैं। गुलामी ऐसी बेमजा नहीं है। नहीं तो दुनिया में कोई आदमी इतनी देर तक गुलाम रहने को राजी न हो अगर गुलामी में कोई मजा न हो। गुलामी के भी बड़े मजे हैं। स्वतंत्र होने में जिम्मेवारी बढ़ती है, दायित्व बढ़ता है। स्वतंत्र होने में खतरे बढ़ते हैं। स्वतंत्र होने में खुद से ही भूलें हो जाती हैं। गुलाम होने में न हमसे भूलें होती हैं, न खतरे होते हैं।

मगर वह हालैंड के लोग बड़े गड़बड़ रहे होंगे, उन्होंने कहा कि हमें गुलाम नहीं होना है। फिर क्या कर सकते हो? गुलाम तो होना पड़ेगा। क्योंकि ताकत दुश्मन के पास है, तुम्हारे पास ताकत नहीं है। हालैंड के लोगों ने क्या निर्णय लिया, पता है आपको? हालैंड के लोगों ने निर्णय लिया कि जिस गांव पर जर्मनी का कब्जा हो जाए, उस गांव के लोग गांव की दीवाल तोड़ दें। समुद्र को आ जाने दें, डूब जाएं और खत्म हो जाएं। हालैंड पूरा डूब जाएगा, लेकिन गुलाम नहीं होगा। हालैंड मर जाएगा, लेकिन गुलाम नहीं होगा। और इतिहास में कहने को एक बात तो रह जाएगी कि एक कौम मर गई लेकिन गुलाम होने को राजी नहीं हुई।

जो गुलाम नहीं होना चाहता, मैं आपसे कहता हूं, दुनिया में उसे कोई गुलाम नहीं कर सकता। मार सकता है, हत्या कर सकता है, गुलाम नहीं कर सकता। लेकिन हम गुलाम होने के लिए भीतर से तैयार हैं। अब भी तैयार हैं। अभी भी हम नये-नये ढंग से गुलामी खोज सकते हैं। अगर चीन हम पर हमला करे तो हमारे मुल्क में लाखों लोग तैयार हो जाएंगे कि आ जाओ स्वागत के लिए हम तैयार हैं, हम कम्युनिज्म के नाम से कहेंगे, दूसरे नाम से कहेंगे, भीतर गुलाम भारतीय बैठा हुआ है, जो किसी की भी गुलामी स्वीकार कर सकता है। वह जो भीतर हमारे गुलाम होने की वृत्ति है, वह किसी की भी गुलामी में बड़ी राहत अनुभव करेगी, वह कहेगी चलो, झंझट छूटी, अपनी मुसीबत मिटी, अब तुम सम्हालो।

नहीं, यह इतने दिन गुलाम रहना, हमारे सोचने के गलत ढंग का परिणाम था। इसमें न मुसलमानों का कसूर है, न इसमें तुर्कों का कसूर है, न हूणों का, न अंग्रेजों का। इसमें अगर कोई भी कसूरवार है, तो हमारे सिवाय और कोई कसूरवार नहीं। लेकिन हमारे नेता कहते हैं कि हमारा कोई कसूर नहीं। उन्होंने हमला कर

दिया, हम क्या करें? बड़े मजे की बातें करते हैं। किसी ने हमला कर दिया फिर कुछ करने को नहीं बचता? हमारे नेता कहेंगे, हमारी समाज तो बड़ी बहादुर है। बड़े शेर हैं। अभी देखा आपने, चीन का हमला हुआ था, हिंदुस्तान भर में शेर पैदा हो गए, कविता करने लगे। पूरा मुल्क एकदम कविता करने लगा कि हमको मत छेड़ो, हम सोए हुए शेर हैं। लेकिन कभी आपने सुना है कि सोए शेरों ने यह कहा हो कि हमको मत छेड़ो, या कि सोए शेरों ने कविताएं की हों, यह कभी सुना है? और फिर वे सोए शेर कहां गए? और उनकी कविताएं कहां गईं? कुछ पता नहीं। वह चीन लाखों मील जमीन पर कब्जा किए बैठा है। वे सब शेर खो गए, वे सब कवि खो गए। उनमें से कई पद्म-श्री हो गए, न मालूम क्या-क्या हो गए। वह सब खत्म हो गया। फिर पता ही नहीं चला कि वे गए कहां सब शेर? उतने शेर हमारे पास होते तो फिर क्या कहना था। लेकिन कविता करने वाले शेर हमारे पास बहुत हैं, कविता करने वाले, मतलब कागज के शेर। वह चीन ने जमीन दबा ली।

दिल्ली में मैं एक बड़े नेता से बात कर रहा था, मैंने कहा, उस जमीन का क्या हुआ? वे बड़े नेता बोले कि आप भी उसकी बात करते हैं, वह जमीन बिल्कुल बेकार है, वह किसी काम की ही नहीं; उसमें न कुछ पैदा होता है, न कुछ होता, वह बेकार जमीन है, उसके लिए क्या लड़ना-झगड़ना?

ये हमारे नेता हैं! ये हमारे अगुआ हैं! लेकिन इनका कोई कसूर नहीं है। हमारा पूरा मानस चीजों को स्वीकार करने वाला है, अस्वीकार करने वाला नहीं है। रिबेलियस माइंड नहीं है मुल्क के पास। मुल्क के पास विद्रोही चित्त नहीं है, संतोषी चित्त है। संतोषी चित्त नहीं चाहिए। विद्रोही चित्त चाहिए। असंतुष्ट चित्त चाहिए। एक असंतोष की जलती हुई आग चाहिए जिस आग में मुल्क का सब पुराना जल जाए। सब पुराने मोह गिर जाएं, सब पुराने चिथड़े जल जाएं, सब पुरानी बकवास जल जाए। और चित्त नया हो सके, देश नया हो सके और नये के स्वागत को तैयार हो सके। यह हो सकता है। इसके ही सूत्रों पर तीन दिन मुझे आपसे बात करनी है।

आज पहला सूत्रः डिस्कंटेंट, असंतोष। प्रत्येक चीज से असंतोष। जैसी वह है वैसी नहीं चाहिए; उसमें बहुत कुछ फर्क किया जा सकता है, उसे नया किया जा सकता है। लेकिन हम कहेंगे... हम कहेंगे, चरखा चलाओ, तकली कातो। तो फिर हो गई मुल्क में क्रांति। बैलगाड़ी में यात्रा करो, या और भी जो सज्जन हैं वे कहते हैं, पैदल ही यात्रा करो। पद-यात्रा।

बैलगाड़ी पर रुके हैं हम, और सारी दुनिया कहां से कहां पहुंच गई। वे जेट प्लेनों पर पहुंच गए, वे अंतरिक्षयानों पर पहुंच गए और हम बैलगाड़ी पर रुके हैं। रोने की तबीयत होती है, जो भी आदमी थोड़ा सोचता होगा, रोने की तबीयत होती है। रास्ते से बैलगाड़ी निकलती है और छाती पीट लेने का मन होता है कि हम कहां हैं? हम कहां खड़े रहेंगे? बैलगाड़ियों को लेकर क्या होगा यह? कैसे हम जीतेंगे इस जगत में, कैसे हम खड़े होंगे? नहीं, लेकिन हमें कोई असंतोष नहीं है, हम बैलगाड़ी से ही संतुष्ट हैं। हम भागने के आदी हैं, हम एस्केपिस्ट हैं।

कनफ्यूशियस ने एक घटना लिखी है, लिखा है कि एक बार मैं पहाड़ पर गया। वहां मैंने एक औरत को एक कब्र के ऊपर रोते हुए देखा। मैंने उस औरत से पूछा कि तू क्यों रोती है? क्या हो गया? उसने कब्र बताई, उसने कहा, यह कब्र मेरा पति है। मेरे पति को शेर खा गया है, उसके लिए रोती हूं। तो कनफ्यूशियस ने उस औरत से पूछाः रहती कहां है? पहाड़ पर, उस स्त्री ने कहा, मैं पहाड़ पर ही रहती हूं। पहले शेर मेरे बेटे को खा गया था--वह पीछे कब्र बनी है। उसके पहले मेरे बाप को खा गया था--वह और पीछे कब्र बनी है। अब मेरे पति को खा गया। अब मैं अकेली बची हूं। लेकिन कनफ्यूशियस ने कहाः पागल तू नीचे जाकर बस्ती में क्यों नहीं रहती, यहां पहाड़ पर क्यों रहती है? उस स्त्री ने कहाः बस्ती में? बस्ती में रहना ठीक नहीं, वहां राजा बहुत

बुरा है, उस राजा से बचने के लिए हम यहां संतोष से पहाड़ पर ही रहते हैं। कनफ्यूशियस ने कहा कि राजा बुरा है, तो राजा को बदलना चाहिए या कि गांव छोड़ कर, भाग कर पहाड़ पर रहना चाहिए? लेकिन उस औरत ने कहा कि हम यहीं संतुष्ट हैं, वहां राजा बहुत बुरा है।

मैं कनफ्यूशियस की यह घटना पढ़ता था, मैं यह सोचता था, कनफ्यूशियस कहीं मिल जाए, मिलना बहुत मुश्किल है, ढाई हजार साल पहले हो चुका। लेकिन जिंदगी अनूठी है, मिल भी सकता है, कहीं मिल जाए, तो उससे मैं कहूं कि वह औरत जो चीन में रहने लगी थी, वहां जाकर पहाड़ पर खोज-बीन करो, कहीं भारत की रहने वाली तो नहीं थी? क्योंकि मुझे शक होता है वह औरत भारतीय होनी चाहिए। यह भारतीय मानस है, यह कहता है, जहां तकलीफ हो वहां से भाग जाओ, कहीं छिप जाओ। अगर घर-गृहस्थी में दुख मालूम होता है, तो घर-गृहस्थी को बदलो मत, संन्यासी हो जाओ। अगर औरत के साथ तकलीफ मालूम होती है, तो औरत और आदमी की बीच की व्यवस्था को मत बदलो, औरत को छोड़ कर भाग जाओ। अगर बच्चे परेशान करते हैं, तो बच्चों को छोड़ दो, लेकिन बच्चों की जिंदगी को नया करने का, जहां से परेशानी होती है, उसको बदलने के लिए कुछ मत करो।

इसका मतलब क्या होता है? इसका मतलब होता हैः पलायनवादी रुख। भाग जाओ, जिंदगी का सामना मत करो। जिंदगी का सामना करना हो, तो असंतुष्ट होने की क्षमता, पात्रता और साहस चाहिए। और मरना हो, तो ठीक है, संतोष बिल्कुल ठीक है। लेकिन संतोष ही रखना है, तो फिर श्वास भी नहीं लेना चाहिए, क्योंकि श्वास भी असंतुष्ट आदमी लेता है। अगर आदमी बिल्कुल संतुष्ट हो जाए, तो श्वास भी क्यों लेगा? क्या जरूरत श्वास लेने की? पानी पीने की क्या जरूरत? भोजन करने की क्या जरूरत? कुछ भी जरूरत नहीं है फिर। या तो इतना संतुष्ट हो जाओ... भारत से कहने का मन होता है कि बिल्कुल मर जाओ, और या फिर छोड़ो इस संतोष को और जिंदगी की राह पकड़ो, और जिंदगी को बदलने की हिम्मत जुटाओ। यह हिम्मत जुटाई जा सकती है। नये बेटों से, नये बच्चों से आशा बांधी जा सकती है। उनकी आंखों में हिम्मत की झलक मालूम पड़ती है। लेकिन पुराने लोग उन्हें बिगाड़ने की इतनी कोशिश में लगे हैं कि बहुत डर है कि कहीं वे बिगाड़ न दें। हिंदुस्तान में जवान आदमी पैदा ही नहीं हो पाता, उसके पहले बूढ़े मिल कर उसे बूढ़ा बना देते हैं।

इन आने वाले तीन दिनों में यह मुल्क कैसे जवान हो सके, यह मुल्क कैसे विद्रोह सीख सके, यह मुल्क कैसे क्रांति से गुजर सके, उसके कुछ सूत्रों पर हम बात करेंगे। आज तो पहले सूत्र पर मैंने बात की हैः संतोष को छोड़ दो, असंतोष को स्वीकार करो। असंतोष मार्ग है परिवर्तन का, असंतोष मार्ग है क्रांति का, असंतोष मार्ग है नये जीवन की उपलब्धि का।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तीसरा प्रवचन

विचार क्रांति की आवश्यकता

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक आदमी परदेस गया, एक ऐसे देश में जहां की वह भाषा नहीं समझता है और न उसकी भाषा ही दूसरे लोग समझते हैं। उस देश की राजधानी में एक बहुत बड़े महल के सामने खड़े होकर उसने किसी से पूछा, यह भवन किसका है? उस आदमी ने कहाः कैवत्सन। उस आदमी का मतलब थाः मैं आपकी भाषा नहीं समझा। लेकिन उस परदेसी ने समझा कि किसी कैवत्सन नाम के आदमी का यह मकान है। उसके मन में बड़ी ईर्ष्या पकड़ी उस आदमी के प्रति जिसका नाम कैवत्सन था। इतना बड़ा भवन था, इतना बहुमूल्य भवन था, हजारों नौकर-चाकर आते-जाते थे, सारे भवन पर संगमरमर था! उसके मन में बड़ी ईर्ष्या हुई कैवत्सन के प्रति। और कैवत्सन कोई था ही नहीं! उस आदमी ने सिर्फ इतना कहा था कि मैं समझा नहीं कि आप क्या पूछते हैं।

फिर वह आदमी घूमता हुआ बंदरगाह पर पहुंचा। एक बड़े जहाज से बहुमूल्य सामान उतारा जा रहा था, कारें उतारी जा रही थीं। उसने पूछा, यह सामान किसका उतर रहा है? एक आदमी ने कहाः कैवत्सन। उस आदमी ने कहाः मैं समझा नहीं कि आप क्या पूछते हैं?

उस परदेसी की ईर्ष्या और भी बढ़ गई। जिसका वह भवन था, उसी आदमी की ये बहुमूल्य कारें भी उतारी जा रही थीं! और वह आदमी था ही नहीं! उसका मन आग से जलने लगा। काश, वह भी इतना धनी होता! और जब वह रास्ते पर लौटता था--उदास, चिंतित, दुखी, ईर्ष्या से भरा हुआ--तो उसने देखा कि किसी की अरथी जा रही है और हजारों लोग उस अरथी के पीछे हैं। निश्चित ही, जो आदमी मर गया है वह बड़ा आदमी होगा! उसके मन में अचानक ख्याल आया, कहीं कैवत्सन मर तो नहीं गया है! उसने राह चलते एक आदमी से पूछा कि कौन मर गया है? उस आदमी ने कहाः कैवत्सन। मैं समझा नहीं।

उस आदमी ने अपनी छाती पीट ली। निश्चित ईर्ष्या हुई थी उस आदमी से। लेकिन बेचारा मर गया! इतना बड़ा महल! इतनी बढ़िया कारें! इतनी धन-दौलत! वह सब व्यर्थ पड़ी रह गई! वह आदमी मर गया जो आदमी था ही नहीं!

बहुत बार ऐसी ही हालत मुझे अपने संबंध में मालूम पड़ती है। ऐसा लगता है कि किसी परदेस में हूं। न आप मेरी भाषा समझते हैं, न मैं आपकी भाषा समझता हूं। जो कहता हूं, जब आपमें उसकी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है तो बहुत हैरान हो जाता हूं, क्योंकि वह तो मैंने कभी कहा ही नहीं था! जब आप कुछ पूछते हैं तो जो मैं समझता हूं कि आपने पूछा है, जब मैं उत्तर देता हूं और आपकी आंखों में झांकता हूं तो पता चलता है, यह तो आपने पूछा ही नहीं था! एक अजनबी, एक आउटसाइडर, एक परदेसी की तरह मेरी हालत है।

लेकिन फिर भी कोशिश करता हूं समझाने की वह जो मुझे दिखाई पड़ता है। नहीं मेरी इच्छा है कि जो मुझे दिखाई पड़ता है उसे आप मान लें; क्योंकि जो आदमी भी किसी से कहता है कि मेरी बात मान लो, वह आदमी मनुष्य-जाति का दुश्मन है; क्योंकि जब भी मैं यह कहता हूं कि मेरी बात मान लो तब मैं यह कहता हूं, मुझे मान लो और अपने को छोड़ दो। और जो भी आदमी किसी से यह कहता है कि खुद को छोड़ दो और किसी दूसरे को मान लो, वह आदमी लोगों की आत्माओं की हत्या करता है। जितने लोग दूसरों को मनाने के लिए आतुर हैं वे सारे लोग मनुष्य-जाति के लिए खतरनाक सिद्ध होते हैं।

मैं नहीं कहता हूं कि मेरी बात मान लो; मानने का कोई सवाल नहीं है। मैं इतनी ही कोशिश करता हूं कि मेरी बात समझ लो। और समझने के लिए मानना जरूरी नहीं है। बल्कि जो लोग मान लेते हैं वे समझ नहीं पाते हैं। जो नहीं मानते हैं वे भी नहीं समझ पाते हैं। क्योंकि मानने और न मानने की जल्दी में समझने की फुर्सत नहीं मिलती है। जिस आदमी को समझना है उसे मानने और न मानने की आतुरता नहीं दिखानी चाहिए; उसे समझने की ही आतुरता दिखानी चाहिए।

मेरी बात को मानने से आपका कोई विकास नहीं होगा। किसी की बात मानने से किसी का कभी कोई विकास नहीं होता है; लेकिन किसी की भी बात समझने से जरूर विकास होता है। क्योंकि जितना आप समझने की कोशिश करते हैं उतनी आपकी समझ विकसित होती है। लेकिन हम सारे लोग उत्सुक होते हैं मानने या न मानने को। क्योंकि समझने में श्रम करना पड़ता है, मानने न मानने में श्रम की कोई भी जरूरत नहीं पड़ती।

और हम मानसिक रूप से इतने आलसी हो गए हैं कि हम मन से कोई भी श्रम नहीं करना चाहते हैं। इसीलिए दुनिया में इतने अनुयायी दिखाई पड़ते हैं; दुनिया में इतने वाद, इतने इज्म दिखाई पड़ते हैं। इसीलिए दुनिया में इतने गुरु दिखाई पड़ते हैं, इतने शिष्य दिखाई पड़ते हैं। जिस दिन मनुष्य मानसिक श्रम करने को राजी होगा, इस दुनिया में कोई अनुयायी नहीं होगा, कोई वाद नहीं होगा, कोई गुरु, कोई शिष्य नहीं होगा।

जब तक हम मानसिक रूप से श्रम करने को राजी नहीं हैं तब तक दुनिया में ये सब नासमझियां जारी रहेंगी। क्योंकि जो लोग भी श्रम नहीं करना चाहते वे किसी दूसरे के श्रम पर ही आधारित होना चाहते हैं। यह भी एक तरह का शोषण है। मैं सोचूं और आप मान लें, तो आपने मेरा शोषण किया। मैं सोचूं और आपको जबरदस्ती मना दूं, तो मैं आपका शोषण कर रहा हूं। और दुनिया में आर्थिक शोषण इतना ज्यादा नहीं है जितना मानसिक और आध्यात्मिक शोषण है। पैसे का शोषण इतना बड़ा नहीं है, क्योंकि किसी का पैसा छीन लेने से आप उसका कुछ भी नहीं छीनते हैं, लेकिन जब किसी आदमी की आत्मा छिन जाती है तो उसका सब कुछ छिन जाता है।

सारी दुनिया आध्यात्मिक रूप से एक गुलामी में है और गुलामी का कारण है एक मानसिक आलस्य, एक मेंटल लेथार्जी। भीतर हम कुछ भी नहीं करना चाहते हैं। इसलिए कोई भी जोर से कह दे कि मेरी बात मानो, मैं भगवान हूं; या चार नासमझों को इकट्ठा कर ले और बाजार में डुंडी पिटवा दे कि एक बहुत बड़े महात्मा गांव में आ रहे हैं, तो हम मानने को एकदम तैयार हो जाते हैं। हम मानने को तैयार ही बैठे हैं-कोई आ जाए और हमें कहे कि मैं ठीक हूं; जोर से कहना चाहिए; और वस्त्र उसके रंगे हुए होने चाहिए; और उसके आस-पास प्रचार की हवा होनी चाहिए; फिर हम मानने को तैयार हो जाते हैं।

क्या हम सोचने को कभी भी तैयार नहीं होंगे? मनुष्य-जाति का जन्म ही नहीं होगा अगर मनुष्य सोचने को तैयार नहीं होता है। लेकिन हम सोचने को बिल्कुल तैयार नहीं हैं।

मेरा कोई भी आग्रह नहीं है कि मैं जो कहता हूं उसे मानें; और इसलिए न मानें इसका भी आग्रह नहीं है। आग्रह कुल इतना है कि जो मैं कहता हूं उसे सुनें, समझें। वही मुश्किल हो गया, क्योंकि भाषा ही ऐसी मालूम पड़ती है। मैं कोई और भाषा बोलता हूं, आप कोई और भाषा समझते हैं।

एक गांव मैं गया हुआ था। एक मित्र आए और कहने लगे, लोकतंत्र के संबंध में आपका क्या ख्याल है? डेमोक्रेसी के बाबत आप क्या सोचते हैं? मैंने कहा, जिसे तुम लोकतंत्र कहते हो अगर यही लोकतंत्र है, तो इससे तो बेहतर है कि मुल्क तानाशाही में चला जाए। उन्होंने जाकर गांव में खबर कर दी कि मैं तानाशाही को पसंद करता हूं।

यह ऐसे ही हुआ कि जैसे कोई बीमार आदमी मेरे पास आए खांसता-खंखारता और मुझसे पूछे कि मैं क्या करूं, तो उससे मैं कहूं, इस तरह बीमार जिंदा रहने की बजाय तो बेहतर है कि तुम मर जाओ और वह आदमी गांव में खबर कर दे कि मेरा मानना यह है कि सब लोगों को मर जाना चाहिए। लौट कर उस गांव में पता चला, तो पता चला कि मैं लोकतंत्र का दुश्मन हूं और तानाशाही के पक्ष में हूं। और यही नहीं, यह भी पता चला कि मैं खुद ही तानाशाह होना चाहता हूं। तब सिवाय इसके मानने के क्या रास्ता रहा कि भाषाएं शायद हम दो तरह की बोल रहे हैं!

मुझसे ज्यादा लोकतंत्र को प्रेम करने वाला आदमी खोजना थोड़ा मुश्किल है। मैं तो लोकतंत्र को इतना प्रेम करता हूं कि चाहता हूं कि दुनिया में कोई तंत्र ही न रह जाए; क्योंकि जब तक तंत्र है, तब तक लोकतंत्र नहीं हो सकता है। कोई भी तंत्र होगा ऊपर तो आदमी को गुलाम बनाएगा-कम या ज्यादा। लेकिन तंत्र होगा तो गुलाम बनाएगा। तंत्र होगा, शासन होगा, तो आदमी किसी न किसी तरह की गुलामी में रहेगा; कम और ज्यादा दूसरी बात है। जिस दिन तंत्र नहीं होगा उसी दिन जगत में ठीक लोकतंत्र होगा। जिस दिन शासन नहीं होगा उसी दिन दुनिया में ठीक शासन आया, ऐसा कहना चाहिए।

लेकिन मुझे उस गांव में जाकर पता चला कि मैं खुद ही तानाशाह होना चाहता हूं; मैं तानाशाही को पसंद करता हूं। न केवल अखबारों में यह खबर निकली है, एक सज्जन ने पूरी किताब ही लिख दी है इस बात के ऊपर कि मैं तानाशाह होना चाहता हूं। तब सिवाय इसके कि हम अलग-अलग भाषाएं बोल रहे हैं और क्या कहा जा सकता है!

मैं एक गांव में ठहरा हुआ था। जिस घर में रुका हुआ था उस गांव के कलेक्टर की पत्नी मुझसे मिलने आई। जब कालेज में पढ़ता था तो वह महिला मेरे साथ पढ़ती थी। सर्दी की रात थी, मैं कंबल अपने पैरों पर डाले हुए बिस्तर पर बैठा था। वह मिलने आई, वह मुझसे गले मिल गई। न मालूम बचपन की और कालेज के दिनों की बहुत सी स्मृतियां सुनाने लगी। बैठ गई पलंग पर। मैंने उससे कहा कि सर्दी है। कंबल उसने अपने पैरों पर डाल लिया। हम दोनों उस पलंग पर कंबल डाले बैठे रहे।

दूसरे दिन सभा में एक आदमी ने चिट्ठी लिख कर मुझे पूछा कि कल रात एकांत में एक स्त्री के साथ, एक ही बिस्तर पर, एक ही कंबल में आप थे या नहीं? हां या न में जवाब दीजिए! और हम गोल-मोल उत्तर पसंद नहीं करते हैं, या तो हां कहिए या न कहिए।

मैंने कहाः बिल्कुल था; हां।

घर लौट कर आया, घर के लोग कहने लगे, आप बिल्कुल पागल हैं। आपने हां कहा, लोग क्या समझे होंगे! मैंने कहाः बात सच्ची थी, हम एक बिस्तर पर थे, एक ही कंबल में थे, रात भी थी, वे तो ठीक ही कह रहे थे। उन्होंने कहाः यह सवाल नहीं है कि वे क्या... उनका मतलब आप नहीं समझे। उनका मतलब बिल्कुल दूसरा था। सारे गांव में क्या अफवाह उड़ रही है आपको पता नहीं है कि आप एक स्त्री के साथ, एक ही बिस्तर पर, एक ही कंबल में थे।

मैंने कहाः सिवाय इसके कि हम भाषाएं अलग बोलते हैं और क्या समझा जा सकता है? क्या समझा जा सकता है? इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है। फिर मुझसे लोग पूछते हैं कि जवाब दीजिए और जवाब गोल-मोल नहीं होना चाहिए, सीधा-सीधा होना चाहिए, वे हां और न में जवाब चाहते हैं। और तब मैं बहुत चकित भी होता हूं, रोता भी हूं और हंसता भी हूं। कैसे लोगों के साथ... !

तब मुझे याद आती है एक फकीर की। एक फकीर था, बोधिधर्म। वह हिंदुस्तान से चीन गया। लेकिन चीन में नौ वर्षों तक वह आदमी दीवाल की तरफ मुंह किए बैठा रहा। अगर आप उससे मिलने जाते तो बहुत अशिष्ट मालूम पड़ता वह आदमी, क्योंकि वह आपकी तरफ मुंह नहीं करता था, वह दीवाल की तरफ मुंह रखता था; आपकी तरफ पीठ रखता था। वह जब भी बैठता, दीवाल की तरफ मुंह करके बैठता। चीन का सम्राट वू उससे मिलने आया। उसने कहाः यह क्या बदतमीजी है? मैं तुम्हारे पीछे खड़ा हूं, तुम दीवाल की तरफ मुंह किए हो!

उस बोधिधर्म ने कहा कि हजारों अनुभवों के बाद इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि दीवाल की तरफ मुंह करना ठीक होता है; क्योंकि आदमी भी मुझे दीवाल की तरह मालूम पड़ते हैं; कोई सुनता ही नहीं! तो तुम्हारी तरफ मुंह करूं उसमें मुझे ज्यादा बदतमीजी मालूम पड़ती है; क्योंकि तुम आदमी कम और दीवाल ज्यादा मालूम पड़ते हो। और हो सकता है कि मेरी आंखों में तुम्हें ख्याल आ जाए कि यह आदमी मुझे दीवाल समझ रहा है। तो मैं दीवाल की तरफ मुंह रखता हूं, जब कोई आदमी आएगा तो मैं उसकी तरफ मुंह कर लूंगा; लेकिन तुम दीवाल हो।

सम्राट वू ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि पहली बार एक आदमी मुझे मिला जिससे कुछ बात सुनने योग्य थी; लेकिन शायद मैं सुनने योग्य पात्र नहीं था इसलिए उसने मेरी तरफ मुंह नहीं किया।

बोधिधर्म ने ठीक किया। कई बार मुझे भी लगता है कि अगर यही खींचतान भाषा की जारी रहती है तो बजाय आपकी तरफ मुंह करने के दीवाल की तरफ मुंह कर लेना उचित होगा। लेकिन अभी मैं हार नहीं गया हूं और निराश नहीं हो गया हूं। अभी कोशिश जारी रखूंगा। मानना नहीं चाहता हूं कि आप दीवाल हैं। मानने का यही मन होता है कि आप भी एक मनुष्य हैं और भीतर एक विचारशील आत्मा हैं। आपकी सारी कोशिश के बावजूद भी आशा को जगाए रखता हूं और यह कोशिश करता हूं कि शायद किसी दिन बात सुनाई पड़ जाए। लेकिन अभी तो उलटा ही मालूम पड़ता है।

अभी गुजरात लौटा तो बड़ी गर्मी है। गांव-गांव में गया तो लोगों ने कहा, आप गांधी के दुश्मन हैं। तब मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ! अगर गांधी के कोई दुश्मन हैं इस मुल्क में तो गोडसे से भी ज्यादा, गांधीवादी, गांधी के दुश्मन हैं। गोडसे ने गांधी के शरीर की हत्या की, गांधीवादी गांधी की आत्मा की हत्या करने पर पूरी तरह उतारू हैं। गोडसे की गोली के बाद भी गांधी बच गए हैं पूरी तरह। गांधी को वह गोली नहीं लगी, नहीं लग सकती है; लेकिन गांधीवादी जो गांधी की जय-जयकार करके जिस तरह की गोलियां मार रहे हैं, गांधी का नाम भी पुछ जाएगा। लेकिन वे ही लोग खबर करते हैं कि मैं गांधी का दुश्मन हूं।

तब मैं हैरान होता हूं कि गांधी से मेरी दुश्मनी क्या हो सकती है? और कौन गवाह बनेगा? सिवाय गांधी के कोई गवाह नहीं बन सकता था इस मामले में। लेकिन गवाह वे लोग हैं जो गांधी की सब भांति हत्या कर रहे हैं।

यह आपको ख्याल नहीं होगा कि दुनिया में आज तक... जीसस की हत्या उन लोगों ने नहीं की जिन्होंने उसे सूली पर लटकाया था। जीसस की हत्या की ईसाइयों ने, जो उनके अनुयायी हैं। और सुकरात को उन्होंने नहीं मारा जिन लोगों ने सुकरात को जहर पिलाया था। सुकरात को वे लोग मार सकते हैं जो सुकरात के शिष्य होने के ख्याल में पड़ जाएं।

सुकरात मरने के करीब था, तो उसके एक मित्र क्रेटो ने, उसके एक शिष्य ने पूछा कि आपको सांझ जहर दे दिया जाएगा; हम आपको दफनाएंगे कैसे, इस संबंध में कुछ बताइए। सुकरात ने कहाः देखो मजा, वे मेरे

दुश्मन हैं जो मुझे मारने की कोशिश कर रहे हैं और ये मेरे मित्र हैं जो मुझे दफनाने की कोशिश कर रहे हैं! यह देखो मजा कि मेरे मित्र मुझसे पूछते हैं कि दफनाएंगे कैसे! मित्र सदा यही पूछते हैं कि मर तो आप जाओगे, हम दफनाएंगे कैसे।

वे गांधीवादी, गांधी को दफनाने की कोशिश कर रहे हैं। वे मित्र हैं उनके! सुकरात ने बड़े मजे की बात कही थी क्रेटो को। शायद ही क्रेटो समझ पाया हो, क्योंकि भाषाओं के भेद सदा हैं। सुकरात ने कहा थाः पागल क्रेटो, तुम दफनाने की कोशिश करना, लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, तुम सब दफन हो जाओगे फिर भी मैं रहूंगा। और अगर कोई तुम्हें कभी याद भी रखेगा तो सिर्फ इसलिए कि तुमने सुकरात से प्रश्न पूछा था कि हम कैसे दफनाएंगे। और आज क्रेटो के बाबत इतना ही पता है कि उसने सुकरात से पूछा था, और कुछ भी पता नहीं है।

शिष्य दफनाते हैं गुरुओं को; अनुयायी दफनाते हैं नेताओं को; पीछे चलने वाले दफनाते हैं आगे चलने वालों को। क्यों ऐसा हो जाता है लेकिन?

इसके होने के पीछे कुछ कारण है। यह शायद आपको पता न हो, यह शायद ख्याल में भी न हो कि जो आदमी भी किसी का अनुयायी बनता है, वह आदमी पहली तो बात है खतरनाक है, डेंजरस है। क्योंकि कोई बुद्धिमान आदमी कभी किसी का अनुयायी नहीं बनता है; सिर्फ बुद्धिहीन लोग अनुयायी बनते हैं। अनुयायियों की जमात बुद्धिहीनों की जमात है; स्टुपिडिटी की जमात है; जहां सारे बुद्धिहीन इकट्ठे हो जाते हैं।

मैंने सुना है, एक बार एक आदमी को सत्य मिल गया। शैतान के शिष्य भागे हुए शैतान के पास गए और उन्होंने कहा, क्या सो रहे हो, एक आदमी को सत्य मिल गया है! सब मुश्किल पड़ जाएगी। शैतान ने कहा, घबड़ाओ मत, जाकर गांव में खबर कर दो कि एक आदमी को सत्य मिल गया है, किसी को अनुयायी बनना हो तो बन जाओ। शैतान के शिष्यों ने कहा, इससे क्या फायदा होगा; हम ही प्रचार करें?

शैतान ने कहा कि मेरे हजारों साल का अनुभव यह है कि अगर किसी आदमी को सत्य मिला हो और उस आदमी को और उसके सत्य को खत्म करना हो तो अनुयायियों की भीड़ इकट्ठी कर दो। तुम जाओ, गांव-गांव में डुंडी पीट दो कि किसी आदमी को अगर सत्य गुरु चाहिए हो तो सत्य गुरु पैदा हो गया है। तो जितने मूढ़ होंगे वे भाग कर उसके आस-पास इकट्ठे हो जाएंगे और एक बुद्धिमान आदमी हजार मूढ़ों के बीच में क्या कर सकता है!

और यही हुआ। शैतान के शिष्यों ने गांव-गांव में खबर कर दी। जितने बुद्धिहीन जन थे वे सब इकट्ठे हो गए। और वह आदमी भागने लगा कि मुझे बचाओ। लेकिन उसे कौन बचाता! शिष्यों ने उसे जोर से पकड़ लिया। दुश्मन से आप बच सकते हैं, शिष्यों से कैसे बच सकते हैं? इसलिए अगर कभी किसी को सत्य मिल जाए तो अनुयायियों से सावधान रहना, शिष्यों से बचना। वे हमेशा तैयार हैं, शैतान उनको सिखा कर भेजता है।

गांधी जिंदगी भर चिल्लाते रहे कि मेरा कोई वाद नहीं है और अब गांधीवादी उनके वाद को सुव्यवस्था देने की कोशिश में लगे हैं। वे रिसर्च कर रहे हैं, शोध-केंद्र बना रहे हैं, स्कॉलरशिप्स दे रहे हैं, और कह रहे हैं कि गांधी के वाद का रेखाबद्ध रूप तय करो। गांधी के वाद को खड़ा किया जा रहा है। गांधी जिंदगी भर कोशिश करते रहे कि मेरा कोई वाद नहीं है।

सच बात तो यह है कि किसी भी विवेकशील आदमी का कोई वाद नहीं होता। विवेकशील आदमी प्रतिपल अपने विवेक से जीता है, वाद के आधार पर नहीं। वाद के आधार पर वे जीते हैं जिनके पास विवेक नहीं होता है।

वाद का क्या मतलब होता है?

वाद का मतलब होता है, तैयार उत्तर। जिंदगी रोज बदल जाती है, जिंदगी रोज नये सवाल पूछती है और वादी के पास तैयार उत्तर होते हैं। वह अपनी किताब में से उत्तर लेकर आ जाता है कि यह उत्तर काम करना चाहिए। जिंदगी रोज बदल जाती है, वादी बदलता नहीं, वादी ठहर जाता है।

जो महावीर पर ठहर गए हैं वे ढाई हजार वर्ष पहले ठहर गए हैं। ढाई हजार वर्ष में जिंदगी कहां से कहां चली गई और वादी महावीर पर ठहरा है। वह कहता है, हम महावीर को मानते हैं। जो कृष्ण पर ठहरा है वह साढ़े तीन, चार हजार वर्ष पहले ठहरा है। जो क्राइस्ट पर ठहरा है वह दो हजार साल पहले ठहरा है। वे वहां ठहर गए हैं जिंदगी वहां नहीं ठहरी है, जिंदगी आगे बढ़ती चली गई है।

जिंदगी प्रतिपल बदल जाती है। जिंदगी रोज नये सवाल लाती है और वादी के पास बंधे हुए रेडीमेड उत्तर हैं। रेडीमेड कपड़े हो सकते हैं, रेडीमेड उत्तर नहीं हो सकते। वह बंधे हुए उत्तर को लेकर नये सवालों के सामने खड़ा हो जाता है। वह कहता है कि हमारे उत्तर सही हैं। तब ये उत्तर हारते चले जाते हैं। इसलिए वादी व्यक्ति के पास निरंतर हार आती है, कभी जीत नहीं आती। वादी हमेशा हार जाते हैं।

मैंने सुना है, जापान में एक छोटा सा गांव था। उस गांव में दो मंदिर थे। एक मंदिर उत्तर का मंदिर था, एक दक्षिण का मंदिर था। उन दोनों मंदिरों में पुश्तैनी झगड़ा था, दुश्मनी थी।

मंदिरों में हमेशा झगड़ा होता है, यह तो आप जानते हैं। दो मंदिरों में दोस्ती नहीं सुनी होगी। मंदिरों में कभी दोस्ती नहीं होती। अभी वे अच्छे दिन नहीं आए दुनिया में जब मंदिरों में दोस्ती होगी। अभी मंदिरों में झगड़ा होता है। अभी मंदिर खतरनाक हैं। अभी मंदिर धार्मिक नहीं हैं। जब तक मंदिर झगड़ा करवाते हैं तब तक वे धार्मिक कैसे हो सकते हैं? अभी दुनिया में सभी मंदिर अधर्म के अड्डे हैं, क्योंकि उनसे झगड़े की शुरुआत होती है।

उस गांव के दोनों मंदिरों में भी झगड़ा था। झगड़ा इतना ज्यादा था कि पुजारी एक-दूसरे का चेहरा भी देखना पसंद नहीं करते थे। दोनों पुजारियों के पास दो छोटे बच्चे थे-काम के लिए, सब्जी लाने के लिए, ऊपर का काम, सेवा करने के लिए। पुजारियों ने उन बच्चों को समझा दिया था कि कभी भूल कर दूसरे मंदिर की तरफ मत जाना और यह भी समझा दिया था कि दूसरे मंदिर का वह जो लड़का है उससे कोई दोस्ती मत करना। हमारी दुश्मनी बहुत प्राचीन है और प्राचीन चीजें बड़ी पवित्र होती हैं। तो इस पवित्र दुश्मनी को बाधा मत देना; कभी मिलना-जुलना मत।

लेकिन बच्चे बच्चे हैं। बूढ़े बिगाड़ने की कोशिश भी करते हैं तो भी एकदम से बिगाड़ तो नहीं देते। बच्चों को भी बिगड़ने में वक्त लग जाता है। बूढ़े तो बिगाड़ने की कोशिश करते हैं कि जन्म से ही बिगाड़ दें, लेकिन बिगाड़ते-बिगाड़ते वक्त लग जाता है। बच्चे थोड़े दिन तक नहीं बिगड़ते हैं, इनकार करते हैं। जिनमें, जिन बच्चों में जितनी जान होती है वे अपने मां-बाप से उतना लड़ते हैं कि बिगाड़ नहीं सकोगे हमें। लेकिन अक्सर मां-बाप जीत जाते हैं और बच्चे हार जाते हैं। अब तक तो ऐसा ही हुआ है, बच्चे अब तक नहीं जीत सके हैं। लेकिन आगे आशा बांधनी चाहिए कि वह वक्त आएगा कि मां-बाप हारेंगे और बच्चे जीतेंगे; क्योंकि जब तक बच्चे नहीं जीतते हैं मां-बाप से, तब तक दुनिया के पुराने रोग समाप्त नहीं हो सकते। वे जारी रहेंगे। क्योंकि मां-बाप उस जहर को बच्चों में डाल देते हैं।

वे बूढ़े पुजारी भी उन बच्चों को समझाते थे कि कभी भूल कर देखना भी मत! लेकिन बच्चे बच्चे हैं, कभी-कभी मौके-बेमौके चोरी से छिप कर वे आपस में मिल लेते थे। चोरी से मिलना पड़ता था। दुनिया इतनी बुरी है कि यहां अच्छे काम भी चोरी से करने पड़ते हैं; अभी अच्छे काम खुलेआम करने की नौबत नहीं आ पाई है। बच्चों

को चोरी से मिलना पड़ता था। लेकिन एक दिन एक पुजारी ने देख लिया कि उसका बच्चा दूसरे बच्चे से रास्ते पर मिल रहा है। उस पुजारी को आग लग गई।

हिंदू बाप को आग लग जाती है, मुसलमान बेटे से उसका बेटा मिल रहा हो। और बेटे से बेटा मिल रहा हो तब तो आग कम लगती है, अगर बेटी से बेटा मिल रहा हो तब आग बहुत लग जाती है। क्योंकि दो बेटों का मिलना उतना खतरनाक नहीं है, लेकिन एक बेटे और बेटी का मिलना बहुत खतरनाक हो सकता है। वह खतरनाक इतना हो सकता है कि हिंदू और मुसलमान दोनों उस खतरे में बह जाएं। इसलिए बेटी और बेटे को मिलने की बिल्कुल ही रुकावट है।

पुजारी ने देखा, वह क्रोध से भर गया और उस लड़के को बुलाया और कहा, तू उससे क्या बात कर रहा था? मैंने कितनी बार कहा कि उससे बात नहीं करनी है!

उस लड़के ने कहाः आज तो मुझे भी लगा कि आप ठीक कहते हैं कि उससे बात नहीं करनी है, क्योंकि आज मैं पराजित होकर लौटा हूं। मैंने उस लड़के से पूछा कि कहां जा रहे हो? उस लड़के ने कहा, जहां हवाएं ले जाएं। और मैं एकदम हैरान रह गया। उसने ऐसी मैटाफिजिकल, इतनी दार्शनिक बात कह दी कि जहां हवाएं ले जाएं। फिर मुझे कुछ सूझा ही नहीं कि आगे मैं क्या कहूं।

उस पुजारी ने कहाः यह बहुत खतरनाक बात है! हम कभी उस मंदिर के किसी आदमी से नहीं हारे। यह हार पहली है, कल उस लड़के को हराना पड़ेगा। तू कल उससे जाकर पूछना फिर कि कहां जा रहे हो? और जब वह कहे जहां हवाएं ले जाएं, तो उससे कहना कि अगर हवाएं रुकी हों और न चल रही हों तो फिर कहीं जाओगे कि नहीं? फिर वह भी घबड़ा जाएगा।

वह लड़का उत्तर तैयार लेकर जाकर रास्ते पर खड़ा हो गया। उत्तर तैयार!

उत्तर तैयार बुद्धिहीनता का लक्षण है। जिस आदमी के पास भी उत्तर तैयार है उससे ज्यादा ईडियट, उससे ज्यादा जड़ बुद्धि का आदमी खोजना मुश्किल है। उत्तर तैयार होना ही मीडियाकर माइंड का लक्षण है। बुद्धिमान आदमी के पास उत्तर कभी तैयार नहीं होते। वह प्रश्नों का साक्षात करता है और उत्तर जन्मते हैं, उत्तर तैयार नहीं होते।

पर उस लड़के ने उत्तर तैयार कर लिया और वह जाकर रास्ते पर खड़ा हो गया। अब वह तैयार अपना उत्तर रखे है कि कब वह आए और मैं पूछूं।

पंडित इसी तरह के होते हैं। सब उत्तर तैयार हैं।

वह लड़का आया रास्ते पर। तैयार उत्तर वाले लड़के ने पूछा कि मित्र, कहां जा रहे हो?

पूछने में उसे उत्सुकता नहीं थी, उसे उत्सुकता थी अपना उत्तर देने में। बहुत कम लोग हैं जिनकी उत्सुकता पूछने में होती है, बहुत अधिक लोग ऐसे ही हैं जिनको अपने उत्तर में उत्सुकता होती है। और जिन लोगों को उत्तर में उत्सुकता होती है, उनका पूछना सदा झूठा होता है।

उस लड़के ने कहाः कहां जा रहा हूं? जहां पैर ले जाएं!

अब बड़ी मुश्किल हो गई, क्योंकि उत्तर तैयार था! अब क्या करें, क्या न करें! वही उत्तर देना व्यर्थ हो गया है। क्रोध आया बहुत, अपने पर नहीं, इस लड़के पर कि बेईमान है! अपनी बात बदलता है! कल कहता था कि हवा जहां ले जाए, आज कहता है कि पैर जहां ले जाएं। बेईमान!

लेकिन लौट कर अपने गुरु को कहा कि वह लड़का तो बहुत बेईमान निकला। उस गुरु ने कहा कि उस मंदिर के लोग सदा से बेईमान रहे हैं। नहीं तो झगड़ा हमारा क्या है! क्या वह उत्तर बदल गया? कहा, वह तो बदल गया।

जो बुद्धिहीन हैं उन्हें कभी ख्याल ही नहीं आता कि जिंदगी रोज बदल जाती है। जिंदगी बड़ी बेईमान है। सिर्फ मुर्दे नहीं बदलते, जिंदगी बदल जाती है। फूल बदल जाते हैं, पत्थर उनके नीचे वैसे ही पड़े रहते हैं। वे बिल्कुल नहीं बदलते। पत्थर मन में सोचते होंगे कि बड़े बेईमान हैं ये फूल! सुबह खिलते हैं, दोपहर गिरने लगते हैं। क्या बेईमानी है! क्या बदलाहट मचा रखी है! सुबह कुछ, दोपहर कुछ, सांझ कुछ हो जाते हैं! हम पत्थरों को देखो, जैसे सुबह थे वैसे अब हैं। वैदिक युग से लेकर अब तक हम पत्थर ही हैं। ये फूलों का कोई भरोसा नहीं। इन फूलों का दिखता है कोई ठिकाना नहीं। इन फूलों के पास कोई आत्मा नहीं है। बस, बदल जाते हैं!

उस बच्चे ने कहा कि वह तो बदल गया, अब मैं क्या करूं? उसके गुरु ने कहा कि तुम्हें उसे हराना जरूरी है, मैं फिर तुझे उत्तर बताता हूं। तू तैयार करके अगली बार फिर जाना।

लेकिन फिर ख्याल न आया कि तैयार उत्तर हार गया था। गुरु को ख्याल आया कि वह उत्तर हार गया है। हार गया था तैयार उत्तर, लेकिन गुरु ने समझा कि वह खास उत्तर हार गया है। नासमझ यही समझते रहते हैं कि वह खास उत्तर हार गया तो दूसरा उत्तर काम आ जाएगा, लेकिन उन्हें पता नहीं कि तैयार उत्तर हमेशा हार जाते हैं। तैयार उत्तर हारता है; कोई उत्तर नहीं हारता।

दूसरे दिन उसने कहा कि जब वह पूछे कि जहां पैर ले जाएं तो उससे कहना कि भगवान न करे कि पैर से लंगड़े हो जाओ! अगर लंगड़े हो गए तो कहीं जाओगे कि नहीं?

वह लड़का खुश, फिर जाकर उसी रास्ते पर खड़ा हो गया। देख रहा है, प्रतीक्षा कर रहा है। वह लड़का उस मंदिर से निकला। उसने फिर उससे पूछा कि मित्र, कहां जा रहे हो?

उस लड़के ने कहाः साग-सब्जी लेने बाजार जा रहा हूं।

यह हमारा देश तैयार उत्तरों से पीड़ित है। यहां सब उत्तर तैयार हैं और कोई आदमी जिंदगी के किसी सवाल को सीधा एनकाउंटर, सीधा साक्षात करने के लिए तैयार नहीं है। वे चाहे उत्तर बुद्ध ने तैयार किए हों, चाहे महावीर ने, चाहे कृष्ण ने, चाहे अभी गांधी ने, वे उत्तर सब हमारे पास तैयार हैं और उन उत्तरों को पकड़ कर हम बैठे हैं। इस देश की आत्मा इसीलिए अविकसित रह गई है। इस देश की आत्मा इसीलिए पत्थर हो गई है कि उसने फूल होने का गुण खो दिया है। उसने परिवर्तन की क्षमता खो दी है। वह ठहर गई है, अटक गई है, स्टैटिक हो गई है। और अगर कोई कहे कि छोड़ दो तैयार उत्तरों को, तो हम कहेंगे, हमारे महात्माओं को छीनते हो? हमारे गुरुओं को छीनते हो? हमारे तीर्थंकरों को छीनते हो? बड़े दुश्मन हो हमारे!

कोई आपके तीर्थंकर नहीं छीन रहा है; कोई आपके महात्मा नहीं छीन रहा है; लेकिन आप इतने जोर से पकड़े हुए हो कि आपको लगता है कि कहीं छिन न जाए। पकड़ने की वजह से यह डर पैदा होता है कि कहीं छिन न जाए! पकड़ना छोड़ दो, कोई तीर्थंकर नहीं छिनेगा, कोई महात्मा नहीं छिनेगा। वे अपनी हैसियत से कुछ हैं, आपके पकड़ने की वजह से कुछ भी नहीं हैं। लेकिन हम जोर से पकड़े हुए हैं। हम उनको सहारा समझे हुए हैं।

गांधी ने कुछ उत्तर दिए थे और गांधी एक अदभुत आदमी थे। मैं मानता हूं कि गांधी ने हिम्मत की थी, उनके पास तैयार उत्तर नहीं थे। हिंदुस्तान में अगर पिछले दो हजार वर्षों में किसी आदमी ने हिंदुस्तान के जीवन को गति दी तो वह आदमी गांधी था। और गति देने का एकमात्र कारण था कि उस आदमी के पास तैयार

उत्तर नहीं थे। हिंदुस्तान के दूसरे सारे नेताओं के पास तैयार उत्तर थे, गांधी के पास तैयार उत्तर नहीं था। इसलिए गांधी हिंदुस्तान की जिंदगी में बड़े बेमौजूं थे।

हिंदुस्तान के सभी नेता गांधी से परेशान रहे। हिंदुस्तान के बड़े नेताओं ने गांधी के प्रति पीछे छिप कर हंसी और मजाक भी की कि यह आदमी गड़बड़ है, क्योंकि यह आदमी कब क्या कहेगा, कब क्या करेगा, इसका कोई भरोसा नहीं। यह आदमी बदल जाता है। यह आदमी सुबह कुछ कहता है, सांझ कुछ कहता है। पिछले वर्ष कुछ कहा था, इस वर्ष कुछ कहने लगता है। यह आदमी भरोसे के योग्य नहीं है। लेकिन गांधी, अकेले आदमी ने इस मुल्क को इतनी गति दी जितनी इस मुल्क के हजारों-लाखों महात्मा मिल कर इसको नहीं दे सकते थे।

कैसे दी इस आदमी ने गति?

इस आदमी के गति देने का बुनियादी सूत्र यह था कि इस आदमी के पास तैयार उत्तर नहीं था। यह आदमी जिंदगी को जीने की कोशिश किया; जिंदगी को सामना करने की कोशिश की। जिंदगी से जूझ कर जो उत्तर आया वह इस आदमी ने दिया। लेकिन वह उत्तर भी इसने कभी नहीं माना कि यह अल्टीमेट है, चरम है। इतना ही कहा कि अभी यह सूझता है। कल दूसरा भी सूझ सकता है, परसों तीसरा भी सूझ सकता है।

हिंदुस्तान के किसी महात्मा ने कभी इस तरह की भाषा नहीं बोली थी, हिंदुस्तान के महात्मा हमेशा चरम भाषा बोलते हैं। वे कहते हैं कि यह आखिरी उत्तर है, यह सर्वज्ञ की वाणी है। बस इसके आगे अब कुछ भी नहीं है, यह अंतिम हो गया।

गांधी ने बड़ी हिम्मत की और कहा कि यह सर्वज्ञ की वाणी नहीं है, एक खोजी की वाणी है; एक खोजने वाले की। इसलिए अपनी किताब को नाम दियाः सत्य के प्रयोग। सत्य की उपलब्धि नहीं, एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ। भूल-चूक की संभावना है प्रयोग में। भूल-चूक की संभावना को स्वीकार किया।

इस आदमी ने एक अदभुत काम किया। हम इस आदमी के पीछे फिर पड़ गए हैं कि इसने जो अदभुत काम किया था उसको खत्म कर दें, उसकी हत्या कर दें। हम कहते हैं, गांधी का वाद बनाएंगे, हम उत्तर तैयार रखेंगे। जो गांधी ने उत्तर दिया था वही उत्तर हम आगे भी देंगे। बस गांधी की हत्या शुरू हो गई। गांधी का वाद यानी गांधी की हत्या। जिस आदमी का वाद बनाओगे उसी की हत्या हो जाएगी।

और लोग मुझसे कहते हैं कि मैं गांधी का दुश्मन हूं! गांधी का दुश्मन कौन है? जितने लोग गांधी का लेबल लगा कर खड़े हुए हैं वे सब गांधी के दुश्मन हैं। गांधी के लेबल की बिल्कुल जरूरत नहीं है, गांधी की जिंदगी को समझने की जरूरत है। और अगर समझेंगे तो पहला सूत्र, पहला सूत्र यह समझ में आएगा कि गांधी के पास तैयार उत्तर नहीं हैं और हमारे पास भी तैयार उत्तर नहीं होने चाहिए। हम भी इस जिंदगी को समझें, और देखें, और पहचानें।

हिंदुस्तान के सारे जगत में पिछड़ जाने के बुनियादी कारणों में से एक कारण यह है। दुनिया में किसी कौम ने अपने उत्तर तैयार नहीं रखे हैं। उन्होंने उत्तर छोड़ने शुरू कर दिए हैं, वे नये उत्तर की खोज में हैं। और हम? हमें जब भी जिंदगी में सवाल उठेगा, भागेंगे फौरन कृष्ण के पास, भागेंगे फौरन महावीर के पास कि क्या है उत्तर। हमारी अपनी कोई आत्मा नहीं है? हमारे पास अपना कोई विकासशील चित्त नहीं है? हमारे देश के पास अपनी कोई क्षमता नहीं है कि हम जिंदगी को समझें और जवाब दें?

नहीं, लेकिन इसमें डर रहता है, नये उत्तर में डर रहता है, भूल हो सकती है। पुराने उत्तर में कोई डर नहीं रहता, भूल नहीं होती।

लेकिन ध्यान रखें कि जो कौम भूल करने की क्षमता खो देती है वह कौम मर जाती है। भूल करने की क्षमता जीवन का लक्षण है। इसलिए मैं कहता हूं कि रोज भूल करना, भूल करने से मत डरना। हां, एक ही भूल दुबारा मत करना, क्योंकि बंधी हुई भूल भी बंधा हुआ उत्तर हो जाती है। जिंदगी तो एक एडवेंचर है, एक खोज है, एक साहस की खोज है, एक अभियान है, जहां बहुत भूलें होंगी। भूलों से हम सीखेंगे और आगे बढ़ेंगे। अगर हमने भूलें ही नहीं कीं तो फिर हम सीखेंगे नहीं और आगे नहीं बढ़ेंगे।

और इसलिए हम सुरक्षा चाहने वाले लोग किसी को पकड़ लेते हैं और कहते हैं, तुम्हारे उत्तर सदा के लिए हो गए, अब हम दुबारा नये उत्तर न खोजेंगे। नये उत्तरों में खतरा रहता है, असुरक्षा रहती है, भूल हो सकती है। महात्मा का दिया हुआ उत्तर है, इसको जोर से पकड़ लो। महात्माओं के दिए ताबीज हम पकड़ते थे, वह इतना खतरनाक नहीं था; क्योंकि महात्माओं के ताबीज बिल्कुल बेकार हैं उनसे कोई खतरा नहीं है। लेकिन महात्माओं के दिए उत्तर अगर मुल्क ने पकड़े तो मुल्क का विकास अवरुद्ध हो जाएगा; मुल्क आगे नहीं जा सकता है।

मैं गांधी का दुश्मन नहीं हूं। गांधी से जैसा मेरा प्रेम है, बहुत कम लोगों का हो सकता है। लेकिन प्रेम को प्रकट करने का हम एक ही रास्ता जानते हैं कि किसी आदमी की पत्थर की मूर्ति बना कर उस पर फूल चढ़ाओ। प्रेम का हम एक ही रास्ता जानते हैं कि पूजा करो। प्रेम का हम एक ही रास्ता जानते हैं कि किसी आदमी को भगवान बना दो, बस प्रेम पूरा हो गया। और मैं आपसे कहता हूं कि यह प्रेम का रास्ता नहीं है, यह किसी आदमी से बचने की तरकीब है।

जिस आदमी से बचना हो उसको भगवान बना दो। भगवान होते ही हमारी झंझट के बाहर हो गया। हम आदमी रह गए, वह भगवान हो गया। हमारे उसके बीच फिर कोई कम्युनिकेशन, कोई संवाद का वाहन नहीं रहा, कोई बीच का माध्यम नहीं रहा। वह भगवान हो गया, बात खत्म हो गई। हमने पहले भी अच्छे आदमियों से इसी तरह छुटकारा पाया है। कृष्ण को भगवान बना दिया, मामला खत्म हो गया। महावीर को तीर्थंकर बना दिया, मामला खत्म हो गया। फिर महावीर जो करते हैं, हम कह सकते हैं कि वे तीर्थंकर हैं इसलिए करते हैं; हम साधारण आदमी हैं, हम क्या कर सकते हैं! हम सिर्फ पूजा कर सकते हैं।

कृष्ण? कृष्ण भगवान के अवतार हैं। राम भगवान के अवतार हैं। वे कुछ भी कर सकते हैं। लीला है उनकी, वे सब कर सकते हैं। हम? हम साधारण आदमी हैं, हम क्या कर सकते हैं! राम से बचने की तरकीब देखी आपने? कृष्ण से बचने की तरकीब देखी? बड़ा कनिंग, बड़ा चालाकी से भरा हुआ रास्ता खोजा हमने। और वह चालाकी यह है कि आदमी को भगवान बना दो, अपनी सीमा के बाहर खदेड़ दो। उस आदमी को हमने आदमियत के बाहर कर दिया। और आदमियत के जो बाहर हो गया, उससे फिर हमारा कोई लेन-देन नहीं रह जाता। सिर्फ एक लेन-देन रहता है कि पूजा कर लेते हैं, वर्ष में कभी एक दिन त्यौहार मना लेते हैं, शोरगुल मचा देते हैं, बात खत्म हो जाती है। उस आदमी से हमें कुछ प्रयोजन नहीं रहता।

मैं आपसे कहना चाहता हूं कि गांधी को भगवान नहीं बनने देना है। बड़ी कोशिश करनी है कि गांधी भगवान न बन जाएं, ताकि गांधी इस देश के काम आ सकें। गांधी को आदमी ही रहने देना है। लेकिन गांधी के पीछे चलने वाले लोग बड़ी कोशिश में लगे हैं उन्हें भगवान बनाने में। भगवान बनाने से हमारा उनसे छुटकारा हो जाएगा। पूजा करना किसी आदमी की, बस यह मान लेना है कि यह आदमी नहीं था और हम आदमी हैं। हम आदमी हैं और यह आदमी नहीं था, बस बात खत्म हो गई।

हिंदुस्तान ने अपने सब श्रेष्ठ पुरुषों को भगवान बना कर बिठाल दिया, इसलिए हिंदुस्तान का आदमी श्रेष्ठ नहीं हो सका। हिंदुस्तान के आदमी को देखते हैं? जहां इतने बड़े लोग हुए वहां का आदमी इतना छोटा और दीन-हीन क्यों है? कभी इस पर कोई विचार किया आपने? जहां महावीर होते हों, जहां बुद्ध चरण रखते हों, जहां गांधी जैसे अदभुत आदमी के फूल खिलते हों, जहां करोड़ों-अरबों अदभुत लोग पैदा हुए हों, वहां की मनुष्यता की क्या हालत है! वहां का मनुष्य कैसा दीन-हीन और जमीन पर रेंगता हुआ है!

हमको शर्म भी नहीं आती जब हम कहते हैं कि हम बुद्ध, महावीर और कृष्ण और राम के देश के लोग हैं! हमको शर्म भी नहीं आती। हमें देख कर शक होता है कि न कभी राम हुए होंगे, न कभी बुद्ध हुए होंगे, न कभी कृष्ण हुए होंगे। हमें देख कर सबूत नहीं मिलता उनके होने का। हमें देख कर ऐसा लगता है कि ये सब कहानियां हैं मनगढ़ंत। हमें देख कर क्या सबूत मिलता है? हमें देख कर सबूत मिलता है कि महावीर पैदा हुए होंगे हमारे बीच? नहीं साहब, महावीर की वजह से आप बड़े नहीं हो सकते, आपकी वजह से महावीर छोटे हो सकते हैं; क्योंकि आप बहुत हैं, महावीर बिल्कुल एक हैं।

लेकिन यह दुर्भाग्य कैसे हुआ?

यह दुर्भाग्य ऐसे हुआ कि जिन लोगों के कारण यह मनुष्यता ऊपर उठ सकती थी उनको हमने मनुष्यता के बाहर कर दिया। और तब हम अपनी मनुष्यता के घेरे में छोटे रहने में सुखी हो गए, हम छोटे रहने में तृप्त हो गए, छोटा रहना हमारी नियति हो गई। कुछ लोगों का बड़ा होना नियति है, हमारा छोटा होना नियति है।

हिंदुस्तान को अपने सब भगवानों को नीचे उतार कर मनुष्य की भूमि पर खड़ा करना पड़ेगा। महावीर को उतार लाना पड़ेगा अपने बीच कि वे हमारी भीड़ में खड़े हो जाएं। इससे महावीर छोटे नहीं होंगे, इससे हमारे बड़े होने की संभावना बढ़ती है।

यह दुर्भाग्य, यह बहुत ही अभागी स्थिति है इस देश की कि जहां इतने अदभुत लोग हों वहां की आदमियत इतनी छोटी हो! क्या कारण है?

और कभी-कभी मैं सोचता हूं कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि ये इतने-इतने बड़े लोग इसीलिए इतने बड़े दिखाई पड़ते हैं कि हम बहुत छोटे हैं! जैसे स्कूल में काली तख्ती रहती है, ब्लैक-बोर्ड; सफेद खड़िया से शिक्षक उस पर लिखता है, सफेद दीवाल पर नहीं लिखता। सफेद दीवाल पर भी लिखेगा तो लिख तो जाएगा लेकिन दिखाई नहीं पड़ेगा। दिखाई पड़ेगा काले ब्लैक-बोर्ड पर सफेद खड़िया का लिखा हुआ। कहीं ऐसा तो नहीं है कि ये महात्मा इतने बड़े महात्मा दिखाई पड़ते हैं हमारे ब्लैक-बोर्ड पर! यह दीन-हीन लोगों का जो इतना बड़ा समूह है इसमें एक आदमी बड़ा होकर दिखाई पड़ने लगता है, क्योंकि वह सफेद और हमारा ब्लैक-बोर्ड, उसमें वह बहुत बड़ा हो जाता है।

दुनिया में किसी देश में इतने महापुरुष पैदा नहीं होते जितने हमारे यहां पैदा होते हैं। इसमें कुछ शक की बात है। इसमें पहली शक की बात यह है कि हमारी मनुष्यता बहुत नीची है। इसलिए एक आदमी जरा ही ऊपर उठता है तो बहुत बड़ा दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। और हमारी मनुष्यता इतनी नीची है कि हम उस आदमी का खूब गुणगान करने लगते हैं। क्यों? क्योंकि उस गुणगान में भी हम अपने अहंकार को तृप्ति देने की कोशिश करते हैं।

गांधीजी गोलमेज कांफ्रेंस में इंग्लैंड गए थे। गांधीजी के एक सेक्रेटरी बर्नार्ड शॉ से मिलने गए। बर्नार्ड शॉ से उन्होंने पूछा...

शिष्य हमेशा ही ऐसा पूछते हैं। शिष्य हमेशा पूछते हैं कि हमारे महात्मा के बाबत क्या ख्याल है? महात्मा की फिकर नहीं होती, फिकर इस बात की होती है कि अगर हमारा महात्मा बड़ा है तो हम बड़े महात्मा के बड़े शिष्य हैं! जो मजा... मजा बहुत दूसरा होता है।

सेक्रेटरी ने बर्नार्ड शॉ से पूछा कि महात्मा गांधी के बाबत आपका क्या ख्याल है, आप उनको महात्मा मानते हैं? वह बर्नार्ड शॉ तो बहुत अदभुत आदमी था। उसने कहाः महात्मा? महात्मा मानता हूं, लेकिन नंबर दो; नंबर एक का तो मैं ही हूं।

सेक्रेटरी बहुत हैरान हुए होंगे कि कैसा आदमी है यह! यह कहता है कि नंबर एक का मैं हूं और नंबर दो के गांधी हैं! और दो ही महात्मा हैं दुनिया में, ज्यादा भी नहीं हैं; लेकिन वे नंबर दो, नंबर एक मैं हूं।

बहुत दुखी लौटे और गांधी को आकर कहा कि बर्नार्ड शॉ तो बहुत अजीब सा आदमी मालूम पड़ता है, बहुत अहंकारी मालूम पड़ता है। मैंने पूछा तो उसने यह कहा कि मैं नंबर एक हूं, आप नंबर दो। गांधी ने कहा कि वह ठीक कहता है, वह सच्चा आदमी है, सबके मन में ख्याल तो यही रहता है कि नंबर एक हम हैं। लेकिन कहने की हिम्मत लोग कम जुटा पाते हैं। उसने ठीक बात कह दी।

और इस आदमी को चोट क्यों लगी गांधी के नंबर दो होने से? चोट लगी इसलिए कि नंबर दो महात्मा के शिष्य हो गए। जब आदमी के पास कुछ नहीं रह जाता तो झूठे सब्स्टीट्यूट खोजता है ऊंचे होने के। हम चिल्लाते हैं कि हमारा महावीर, हमारा बुद्ध बहुत महान हैं। क्यों? क्योंकि हमारा है। और हमारा है तो हम भी उसके साथ महान होने का मजा ले लेते हैं। आदमी की तरकीबें अहंकार की बहुत अदभुत हैं।

एक आदमी पेरिस विश्वविद्यालय में फिलासफी का प्रोफेसर था। और उसकी बात मुझे इतनी प्रीतिकर लगती है। एक दिन सुबह ही आकर उसने अपनी क्लास के विद्यार्थियों को कहा कि तुम्हें कुछ खबर मिली, मुझसे बड़ा आदमी इस दुनिया में दूसरा नहीं है। विद्यार्थी समझे कि दिमाग खराब हो गया। एक तो फिलासफी की तरफ दिमाग खराब लोग ही उत्सुक होते हैं, और इनका डर रहता ही है कि कभी भी दिमाग खराब हो जाए। असल में जो दिमाग से काम करेगा उसी के तो खराब होने का डर रहता है। जो दिमाग से काम ही नहीं करेंगे उनका खराब कैसे होगा। लड़के समझे कि दिमाग गड़बड़ हो गया, बेचारा गरीब प्रोफेसर है, यह दुनिया का सबसे बड़ा आदमी कैसे हो गया।

राजनीतिज्ञ अगर दुनिया में कहते फिरते हैं कि हमसे बड़ा कोई भी नहीं है, तो कोई नहीं फिकर करता उनकी, क्योंकि उनका दिमाग खराब होता ही है। लेकिन दर्शन का प्रोफेसर कहने लगे! तो लड़कों ने पूछा कि आप कह रहे हैं यह! आप दुनिया के सबसे बड़े आदमी हैं?

उसने कहाः न मैं केवल कह रहा हूं, मैं सिद्ध कर सकता हूं। क्योंकि मैं बिना सिद्ध किए कोई बात कहता ही नहीं हूं।

उन्होंने कहाः तो आप कृपा करें और सिद्ध कर दें।

लड़कों को बहुत कठिनाई थी कि वह कैसे सिद्ध करेगा! लेकिन उन्हें पता नहीं, उस प्रोफेसर ने बड़ा व्यंग्य किया, बड़ा मजाक किया। दुनिया में कुछ अच्छे लोग बड़े व्यंग्य कर जाते हैं, लेकिन फिर भी हमें पता नहीं चलता।

उस आदमी ने, उस प्रोफेसर ने उठ कर बोर्ड पर गया जहां दुनिया का नक्शा लटका हुआ था। और विद्यार्थियों को कहा कि इस बड़ी दुनिया में सबसे श्रेष्ठ देश कौन सा है? सभी फ्रांस के रहने वाले थे, उन्होंने कहा, फ्रांस। स्वभावतः, फ्रांस में रहने वाला आदमी यही समझता है कि फ्रांस सबसे बड़ा देश है, क्योंकि फ्रांस में

रहने वाला यह कैसे मान सकता है कि जहां वह रहता है वह देश बड़ा न हो! जहां वह रहता है वह देश तो बड़ा होना ही चाहिए। इतना बड़ा आदमी जहां रहता है! फ्रांस सबसे बड़ा देश है।

उस प्रोफेसर ने कहाः तो फिर बाकी दुनिया की बात खत्म हो गई। अब अगर मैं सिद्ध कर दूं कि फ्रांस में मैं सबसे बड़ा हूं तो मैं सिद्ध हो जाऊंगा कि दुनिया में सबसे बड़ा हूं।

तब भी विद्यार्थी नहीं समझ पाए कि वह कहां ले जा रहा है।

फिर उसने कहा कि फ्रांस में सबसे श्रेष्ठ नगर कौन सा है?

तब विद्यार्थियों को शक हुआ। वे सभी पेरिस के रहने वाले थे। उन्होंने कहाः पेरिस।

तब उन्हें थोड़ा शक हुआ कि मामला गड़बड़ हुआ जा रहा है।

उस प्रोफेसर ने कहाः और पेरिस में सबसे श्रेष्ठ स्थान कौन सा है?

निश्चित ही, विद्या का केंद्र, विश्वविद्यालय, युनिवर्सिटी।

तो उसने कहाः अब युनिवर्सिटी ही रह गई सिर्फ। और युनिवर्सिटी में सबसे श्रेष्ठ सब्जेक्ट, सबसे बड़ा विषय कौन सा है?

फिलासफी, दर्शनशास्त्र।

और उसने कहाः मैं दर्शनशास्त्र का हेड ऑफ दि डिपार्टमेंट हूं। मैं इस दुनिया का सबसे बड़ा आदमी हूं!

आदमी का अहंकार कैसे-कैसे रास्ते खोजता है! जब आप कहते हैं, हिंदू धर्म सबसे बड़ा है तो भूल कर यह मत सोचना कि आपको हिंदू धर्म से कोई मतलब है, आपको मतलब खुद से है। आप हिंदू हैं और हिंदू धर्म को महान कह कर अपने को महान कहने की तरकीब खोज रहे हैं। और जब आप कहते हैं कि हमारा भगवान सबसे बड़ा और हमारा महात्मा सबसे बड़ा, तो आपको न भगवान से कोई मतलब है, न महात्मा से कोई मतलब है। आप कहते हैं कि मेरा महात्मा, मैं इतना बड़ा आदमी हूं कि मेरा महात्मा छोटा कैसे हो सकता है?

यह जो दुनिया में झगड़ा है हिंदू-मुसलमान का, ईसाई का, जैन का, बौद्ध का, सिक्ख का, यह झगड़ा महात्माओं का झगड़ा नहीं है, यह महात्माओं के आधार पर बड़े होने वाले लोगों के अहंकार का झगड़ा है।

इसलिए जब अगर मैं कहूं कि महात्मा गांधी को नीचे लाना है, नहीं ले जाना है स्वर्ग पर, वे पृथ्वी के बड़े काम के हैं; उनकी जड़ें पृथ्वी में ही रखना है, नहीं ले जाना है स्वर्ग में। जब मैं कहूं महावीर को पृथ्वी से जोड़ना है, तो हमें बड़ा कष्ट होता है। क्योंकि हम उनको आकाश में समझ कर अपने को भी आकाश में समझने का जो सपना देख रहे थे वह टूट जाता है।

नहीं, मैं गांधी का दुश्मन नहीं हूं। मैं चाहता हूं, गांधी इस पृथ्वी के नमक बनें। मैं चाहता हूं कि गांधी पर हम सोचें, मैं चाहता हूं गांधी से हम सीखें। गांधी को मानें नहीं, गांधी से सीखें। और गांधी से अगर कोई बड़ी से बड़ी बात सीखी जा सकती है तो वह यह कि जिंदगी रोज नये उत्तर मांगती है, जिंदगी रोज नई चेतना मांगती है, जिंदगी बंधी हुई धाराओं में नहीं रुकना चाहती है। और जो कौम रुक जाती है, वह जिंदगी से पिछड़ जाती है और मर जाती है।

भारत एक मरा हुआ देश है। हमारा जो अस्तित्व है वह पोस्थुमस है, मरने के बाद का है। हम हजारों साल से मुर्दे की तरह जी रहे हैं। हमने जिंदगी की धारा खो दी है। रूस के बच्चों से पूछो जाकर कि क्या कर रहे हो? तो बच्चे सोच रहे हैं कि चांद पर कैसे बस्ती बसाएं? अमरीका के बच्चों से पूछो, तो वे सोच रहे हैं कि अंतरिक्ष में कैसे उपनिवेश बसेंगे? और हमारे बच्चों से... हमारे बच्चे रामलीला देख रहे हैं। आंख पीछे की तरफ लगी है।

राम बहुत प्यारे हैं, लेकिन रामलीला देख कर जो कौम रुक जाती है, वह मर जाती है। अभी और रामलीलाएं होंगी। अभी भविष्य में और राम पैदा होंगे, पुराने रामों से बहुत नये। भगवान थक नहीं गया है। और भगवान और नये राम पैदा करेगा। और भगवान कभी भी पुरानी चीज को दोहराता नहीं, हमेशा श्रेष्ठतर को पैदा करता चला जाता है। अभी और रामलीलाएं होंगी अंतरिक्ष के न मालूम किन तारों पर, न मालूम किन ग्रहों पर! लेकिन वे रामलीलाएं अमरीका और रूस के बच्चे देखेंगे। हमारे बच्चों को वह सौभाग्य नहीं मिल सकता है। हमारे बच्चे तो तृप्त हैं, अतीत की रामलीला को देख कर ही शांत हो जाते हैं।

मैं चाहता हूं, यह अतीतोन्मुखी देश भविष्योन्मुखी हो जाए। मैं चाहता हूं, ये आंखें जो पीछे की तरफ जकड़ कर खड़ी रह गई हैं, ये आगे की तरफ देखने लगें।

भगवान ने बड़ी गलती की है कि हमारी आंखें आगे की तरफ लगाईं। अगर वह चेंथी पर पीछे लगा देता तो हम बड़े खुश होते, क्योंकि आगे हमको देखना नहीं, हम तो पीछे की, रास्तों की उड़ती धूल को देखते हैं-उन रथों को जो निकल चुके, उन कथाओं को जो हो चुकीं। वह सब जो हो चुका वही हमारी आंखों में है, जो होने को है वह हमारी आंखों में नहीं है।

कब तक हम पीछे को पकड़ कर रुके रहेंगे? गांधी हो चुके, अब उनको पकड़ कर रुकने का मतलब फिर वही रामलीला पर रुक जाने का मतलब होगा।

नहीं, हम और गांधी पैदा करेंगे, हम और राम पैदा करेंगे, हम और महावीर पैदा करेंगे; हमारी आत्मा चुक नहीं गई है, हमारे पास अभी पैदा करने की क्षमता बहुत है। हम पीछे नहीं रुकेंगे, हम आगे की तरफ उन्मुख होंगे।

जब मैं यह कहता हूं तो लोग समझते हैं, शायद मैं जो पीछे हो चुके उनका दुश्मन हूं। मैं उनका दुश्मन नहीं हूं। आप हैं उनके दुश्मन जो उनको पकड़ लेते हैं; क्योंकि उनको पकड़ने की वजह से वे लोग और पैदा हो सकते थे, वे अब पैदा नहीं हो पाते। भविष्य की तरफ चाहिए दृष्टि।

इन आने वाले तीन दिनों में यह भविष्योन्मुख समाज कैसे निर्मित होगा, इस समाज के निर्माण के क्या सूत्र होंगे, इस समाज की क्रांति के क्या आधार होंगे, उस संबंध में मैं बातें करूंगा। अभी तो मैंने प्राथमिक बात कही। और अगर प्राथमिक बात में ही गड़बड़ हो गई होगी समझने में, तो फिर बड़ी मुश्किल है। और कुछ बातें कहूंगा। इतनी ही प्रार्थना करूंगा कि समझने की सिर्फ कोशिश करें, मानने की कोई जरूरत नहीं है। न मैं कोई गुरु हूं, न मैं कोई नेता हूं, और न मुझे नेता होने का पागलपन है। मैं तो मानता ही यह हूं कि सिर्फ वे ही लोग नेता होना चाहते हैं जो किसी तरह की इनफिरिअरिटी कांप्लेक्स, किसी तरह की हीनता की ग्रंथि से पीड़ित होते हैं। वे ही लोग सिर्फ नेता होना चाहते हैं। और नेता होना इस मुल्क में अब इतना सरल है कि कोई आदमी अब नेता नहीं होना चाहेगा।

एक छोटी सी कहानी और अपनी बात पूरी करूंगा।

मैंने सुना है, एक गधे ने अखबार पढ़ना सीख लिया था। मुझे भी हैरानी हुई कि गधे ने अखबार पढ़ना कैसे सीख लिया! लेकिन फिर मुझे पता चला कि गधे और कुछ कर भी तो नहीं सकते हैं सिवाय अखबार पढ़ने के। गधा अखबार पढ़ने लगा तो गधा ज्ञानी हो गया। बहुत से गधे अखबार पढ़ कर ही ज्ञानी हो जाते हैं। जब वह अखबार पढ़ने लगा तो वह भाषण देना भी सीख गया। क्योंकि अखबार जो पढ़ लेता है वह भाषण भी दे सकता है। भाषण में और कुछ तो करना नहीं पड़ता, अखबार जो आपके दिमाग में डाल दें उसे मुंह से निकाल

देना पड़ता है। और फिर गधे के पास तो बहुत सशक्त मुंह है, शास्त्रीय कला है। वह भाषण देने लगा। और जब वह भाषण देना सीख गया तो उसने सोचा कि अब छोटे-मोटे गांव में क्या रहना, दिल्ली की तरफ चलना चाहिए। क्योंकि गधों को जैसे ही बोलना आ जाए, अखबार पढ़ना आ जाए, वे एकदम दिल्ली की तरफ जाने शुरू हो जाते हैं। वह गधा एकदम दिल्ली पहुंचा। गधों को दिल्ली पहुंचने से रोकना भी बहुत मुश्किल है। क्योंकि उस गधे ने दस-पच्चीस और आस-पास के गधे इकट्ठे कर लिए थे। और जिसके पास भीड़ है वह नेता है। वह दिल्ली पहुंच गया।

यह जरा पुरानी बात है, पंडित नेहरू जिंदा थे। वह पंडित नेहरू के मकान पर सीधा पहुंच गया। संतरी खड़ा हुआ था द्वार पर, वह आदमियों को रोकने के लिए था, गधों को रोकने के लिए नहीं! उसने गधे की कोई फिकर न की। संतरी गधों की फिकर नहीं कर रहे हैं और गधे महलों में घुस जाते हैं। वह गधा अंदर घुस गया। पंडित नेहरू सुबह सुबह ही अपनी बगिया में टहलते थे। उस गधे ने पीछे से जाकर कहा, पंडित जी!

पंडित जी बहुत घबड़ाए, क्योंकि न वे भूत-प्रेत में मानते थे, न भगवान में मानते थे। चारों तरफ चौंक कर उन्होंने देखा। उन्होंने कहा कि क्या मामला है? यह आवाज कहां से आती है? क्योंकि मैं भूत-प्रेत में मानता ही नहीं। कौन बोल रहा है?

वह गधा डर गया। उसने कहा कि मैं बहुत डर रहा हूं, शायद आप नाराज न हो जाएं। मैं एक बोलता हुआ गधा हूं। आप नाराज तो नहीं होंगे?

पंडित नेहरू ने कहा कि मैं रोज बोलते हुए गधों को इतना देखता हूं कि नाराज होने का कोई कारण नहीं है। किसलिए आए हो?

उस गधे ने कहा कि मैं बहुत डरता था कि आप मुझसे मिलेंगे या नहीं मिलेंगे! आपकी बड़ी कृपा, आप मुझे मिलने का वक्त दे सकते हैं? मैं एक गधा हूं, मिलने का वक्त मिल सकता है?

पंडित नेहरू ने कहाः यहां गधों के अतिरिक्त मिलने के लिए आता ही कौन है! अच्छे आए, क्या प्रयोजन है?

उस गधे ने कहाः मैं नेता बनना चाहता हूं।

पंडित नेहरू ने कहा कि बिल्कुल ठीक है। गधे होने का यही लक्षण है कि आदमी नेता बनना चाहता है!

यह सारा का सारा देश नेता बनने की कोशिश में है। इस देश को नेताओं की जरूरत नहीं है। इस देश को अनुयायियों की, भीड़ की भी जरूरत नहीं है। इस देश को अब उन लोगों की जरूरत है जो विचार करते हैं। इस देश को अब उन लोगों की जरूरत है जो विचार के बीज फेंकते हैं। इस देश को उन लोगों की जरूरत है जो इस देश के सोए हुए विचार को जगाएं। इस देश को एक विचार की क्रांति की जरूरत है। इस मुल्क को राजनीति की नहीं, एक आत्मिक क्रांति की जरूरत है।

मेरी उत्सुकता राजनीति में नहीं है, न मेरी उत्सुकता नेताओं में है, मेरी उत्सुकता इस देश की सोई हुई आत्मा में है। और उस आत्मा को जितनी भी चोट मैं दे सकूं, मैं देना जारी रखूंगा। आप गाली दें, नाराज हों, वह सब मैं स्वीकार कर लूंगा। लेकिन मेरी कोशिश जारी रहेगी कि इस मुल्क की आत्मा को कहीं से चोट लगे, कहीं से जीवन विकसित हो, कहीं से यह देश सोचे और जगे और हम दुनिया की दौड़ में पिछड़ न जाएं। हम बहुत पिछड़ गए हैं।

इन तीन दिनों में जीवन और समाज की क्रांति के कुछ सूत्रों पर बात करनी है।

आपने आज मेरी प्राथमिक बात इतनी शांति और प्रेम से सुनी, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

चौथा प्रवचन

अहिंसा का सार है--प्रेम

मेरे प्रिय आत्मन्!

मित्रों ने बहुत से प्रश्न पूछे हैं। एक मित्र ने पूछा है कि आप गांधी जी की अहिंसा में विश्वास नहीं करते हैं क्या? और यदि अहिंसा में विश्वास नहीं करते हैं गांधी जी, तो क्या आपका विश्वास हिंसा में है?

पहली तो बात यह कि मेरा विश्वास हिंसा में जरा भी नहीं है। और दूसरी बात यह कि गांधी की अहिंसा में भी मैं विश्वास नहीं करता हूं। गांधी की अहिंसा मुझे बहुत अहिंसा नहीं मालूम होती है इसलिए। गांधी की अहिंसा बहुत लचर और बहुत कमजोर है। गांधी की अहिंसा बहुत अधकचरी है, इसलिए। पूर्ण अहिंसा में मेरी आस्था है। गांधी जी की अहिंसा को हम समझने चलें, तो बहुत हैरानी होती है। गांधी जी अफ्रीका में बौर-युद्ध में वालंटियर की तरह सम्मिलित हुए। बौर अपनी आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे। और गांधी जी बौरों की आजादी की लड़ाई को दबाने के लिए जो साम्राज्यशाही प्रयास कर रही थी, उस साम्राज्यशाही की तरफ से वालंटियर की तरह भरती हुए। गांधी जी पहले महायुद्ध में अंग्रेजों के सार्जेंट की तरह भारत में लोगों को मिलिटरी में भरती करवाने का काम करते रहे। यह बड़ी हैरानी की बात मालूम पड़ती है कि पहले महायुद्ध में गांधी जी ने लोगों को मिलिटरी में भरती होने की प्रेरणा दी और युद्ध में जाने की प्रेरणा दी।

पंजाब के एक गांव में मुसलमानों ने बगावत कर दी थी। मुसलमानों को, उस गांव को दबाने के लिए अंग्रेजों ने गुरखों की पल्टन भेजी। अंग्रेजों का यह हिसाब था कि अगर हिंदू गांव बगावत करे, तो मुसलमानों की सेना-टुकड़ी भेजो और अगर मुसलमानों का गांव बगावत करे, तो हिंदुओं की टुकड़ी वहां भेजो। ताकि हिंदू हिंदू होने के कारण मुसलमानों को आग में भून सके। गुरखों की टुकड़ी ने एक अदभुत ऐतिहासिक कार्य किया। गुरखों की टुकड़ी ने मुसलमानी बस्ती पर, मुसलमान लोगों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया। वे बंदूकें जमीन पर टेक कर खड़े हो गए और उन्होंने कहा, हम अपने भाइयों पर गोली नहीं चलाएंगे। यह बड़ी अदभुत ऐतिहासिक और बड़ी अहिंसात्मक घटना थी। उन सैनिकों ने अपनी जान बाजी पर लगा कर गोली चलाने से इनकार किया। और न केवल गोली चलाने से इनकार किया, उन्होंने जाकर अपनी बंदूकें थाने में जमा करवा दीं और जाकर समर्पण कर दिया और कहा कि हम गोली चलाने से इनकार करते हैं, हमें चाहे जो भी सजा दी जाए, हम अपने भाइयों पर गोली नहीं चला सकते हैं।

हम सोच सकते थे कि गांधी जी इन सैनिकों की प्रशंसा करेंगे, लेकिन गांधी जी ने उन सैनिकों की निंदा की। और इंग्लैंड में गांधी जी से जब पूछा गया कि आश्चर्य की बात है कि आप अहिंसक होते हुए उन सैनिकों की निंदा किए जिन्होंने बंदूक चलाने से इनकार किया। तो गांधी जी ने क्या कहा आपको पता है? गांधी जी ने कहा कि मैं सैनिकों को आज्ञाहीनता नहीं सिखा सकता हूं। क्योंकि कल जब देश आजाद हो जाएगा और सत्ता हमारे हाथ में आएगी तो इन्हीं सैनिकों के सहारे हमें शासन करना है। यह किस प्रकार की अहिंसा है, यह थोड़ा विचारणीय है। वे सैनिक भी दंग रह गए होंगे, अगर गांधी जी ने उन सैनिकों की प्रशंसा की होती, तो हिंदुस्तान भर का सैनिक यह हिम्मत जुटा सकता था कि हिंदुस्तान पर गोली चलाने से इनकार कर देता। लेकिन गांधीजी ने उन सैनिकों की निंदा की आज्ञा, अनुशासन के आधार पर। और कहा कि यह अनुशासन को तोड़ना उचित

नहीं है। सैनिक का कर्तव्य है कि वह आज्ञा माने, क्यों? क्योंकि कल जब गांधी जी के लोगों के हाथ में देश आ जाएगा, तो इन्हीं सैनिकों के सहारे हुकूमत करनी है। और हम देख रहे हैं कि बाईस साल की आजादी के इतिहास में, गांधी जी के पीछे चलने वाले लोगों के हाथ में जबसे सत्ता आई है, हिंदुस्तान में जितनी गोली चली है उतनी दुनिया के इतिहास के बीस सालों में कहीं भी नहीं चली है। ये वे ही सैनिक अब गोली चलाने के काम में लाए जा रहे हैं, अब सत्ता गांधीवादियों के हाथ में है। अंग्रेजों ने भी कभी हिंदुस्तान में इतनी गोली नहीं चलाई थी, जितनी जिसको हम अपनी हुकूमत कहते हैं, उसने गोली चलाई है, और जिस बेरहमी से गोली चलाई है। और जितने लोगों की हत्या की है।

यह बहुत हैरानी की बात है, लेकिन यह भी साथ में समझ लेना जरूरी है कि गांधीजी अहिंसात्मक रूप से जो आंदोलन चलाते थे, वह आंदोलन भी दबाव, प्रेशर डालने के लिए है। और मेरी दृष्टि में जहां भी दबाव है, वहां हिंसा है, चाहे दबाव छुरी से डाला जाए, और चाहे मैं आपके घर के सामने आकर अनशन करके बैठ जाऊं और कहूं कि मैं मर जाऊंगा अगर मेरी बात नहीं मानी, यह दबाव भी हिंसा है। दबाव मात्र हिंसा है। दबाव डालने के ढंग अहिंसात्मक हो सकते हैं, लेकिन दबाव खुद हिंसा है। अगर मैं अपनी बात मनवाने के लिए अपनी जान दांव पर लगा दूं और कहूं कि मैं मर जाऊंगा, तो जिसको हम सत्याग्रह कहते हैं और अनशन कहते हैं, वह क्या है? वह आत्महत्या की धमकी है। और वह धमकी हिंसात्मक है। चाहे दूसरे को मारने की धमकी हो और चाहे अपने को मार डालने की धमकी हो, मार डालने की धमकी सदा हिंसात्मक है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह धमकी अपने लिए है कि दूसरे के लिए। और कई बार तो यह हो सकता है कि मैं आपको मारने की धमकी दूं तो आप मेरा मुकाबला कर सकते हैं, लेकिन जब मैं अपने को मारने की धमकी देता हूं तो आपको मैं बिल्कुल निहत्था कर देता हूं, आप मुकाबला भी नहीं कर सकते। यह हिंसा ज्यादा सूक्ष्म है, यह वायलेंस ज्यादा भीतरी है, और बहुत छिपी हुई है, इसका पता चलाना बहुत मुश्किल है।

अगर अहिंसात्मक सत्याग्रह किसी को करना हो, तो न तो खबर करनी चाहिए, न जनता में पता चलना चाहिए, न जिस आदमी के हृदय परिवर्तन के लिए मैं कोशिश कर रहा हूं उसको खबर करनी चाहिए। मौन, एकांत में मैं अपने को शांत करूं, ध्यानस्थ हो जाऊं, समाधिस्थ हो जाऊं, अपने को पवित्र करूं और प्रार्थना करूं और हृदय से वे विचार भेजूं जो दूसरे व्यक्ति को परिवर्तित करते हों, तब तो यह अहिंसा हुई। और अगर अखबारों में प्रचार हो, भीड़-भाड़ को पता चल जाए, मेरी जान को बचाने वाले लोग उत्सुक हो जाएं, और जिस आदमी को मैं बदलना चाहता हूं उसके दरवाजे पर बैठ जाऊं और कहूं कि मैं मर जाऊंगा, यह अहिंसा नहीं है। यह सब हिंसा है। यह हिंसा का ही रूपांतरण है। ये हिंसा के ही श्रेष्ठतम रूप हैं।

मैंने एक मजाक सुनी है। मैंने सुना है, एक युवक एक युवती को प्रेम करता था और प्रेम करने के पीछे दीवाना था, लेकिन इतना कमजोर था कि हिम्मत भी नहीं जुटा पाता था कि यह विवाह कैसे करे? और लड़की का बाप राजी नहीं था। फिर किन्हीं समझदार ज्ञानियों ने उसे सलाह दी कि तू अहिंसात्मक सत्याग्रह क्यों नहीं करता? कमजोर, कायर लड़का था, उसको यह बात जंच गई। कायरों को अहिंसा की बात एकदम जंच जाती है। इसलिए नहीं कि अहिंसा ठीक है, बल्कि कायर इतने कमजोर होते हैं कि कुछ और नहीं कर सकते हैं। गांधी जी की अहिंसा का जो प्रभाव इस देश पर पड़ा वह इसलिए नहीं कि लोगों को अहिंसा ठीक मालूम पड़ेगी, लोग हजारों साल से कायर हैं। और कायरों को यह बात समझ में पड़ गई कि ठीक है, इसमें मरने-मारने का डर नहीं है। इसमें तुम आगे जा सकते हो।

तिलक प्रभावी नहीं हो सके, सुभाष प्रभावी नहीं हो सके। भगत सिंह सूली पर लटक गया और हिंदुस्तान में एक पत्थर नहीं फेंका गया उसके विरोध में। उसका कुल कारण यह था कि हिंदुस्तान जन्मजात कायरता में पोषित हुआ है। भगत सिंह को सूली लग रही थी, गांधी जी वायसराय से समझौता कर रहे थे, और समझौते में हिंदुस्तान के लोगों को आशा थी कि शायद भगत सिंह बचा लिया जाएगा, लेकिन गांधी जी ने एक शर्त रखी कि मेरे साथ जो समझौता हो रहा है, उस समझौते के आधार पर सारे कैदी छोड़ दिए जाएं, लेकिन सिर्फ वे ही कैदी जो अहिंसात्मक ढंग से कैदी हुए हैं। उसमें भगत सिंह नहीं बच सका। क्योंकि एक शर्त उसमें जुड़ी थी कि अहिंसात्मक कैदी ही सिर्फ छोड़े जाएं। भगत सिंह को सूली हो गई। जिस दिन हिंदुस्तान में भगत सिंह को सूली हुई, उसी दिन हिंदुस्तान की जवानी को भी सूली हो गई। उसी दिन हिंदुस्तान को इतना बड़ा धक्का लगा जिसका कोई हिसाब नहीं। गांधी की जीत के साथ हिंदुस्तान में बुढ़ापा जीता, भगत सिंह की मौत के साथ हिंदुस्तान की जवानी मर गई।

उस युवक को किन्हीं ने सलाह दी कि तू पागल है, तेरे से कुछ और नहीं बन सकेगा, तू तो अहिंसात्मक सत्याग्रह कर दे। वह जाकर उस लड़की के घर के सामने बिस्तर लगा कर बैठ गया, और उसने कहा कि मैं भूखा मर जाऊंगा, आमरण अनशन करता हूं, मेरे साथ विवाह करो। घर के लोग बहुत घबड़ाए, क्योंकि अगर वह और कोई धमकी देता, तो पुलिस को खबर करते, लेकिन उसने अहिंसात्मक आंदोलन चलाया था, गांव भर के लड़के मकान का चक्कर लगाने लगे कि अहिंसात्मक आंदोलन है, यह कोई साधारण आंदोलन नहीं है। और प्रेम के लिए अहिंसा का आंदोलन होना ही चाहिए। घर के लोग बहुत घबड़ाए, फिर बाप को किसी ने सलाह दी कि तुम गांव में जाओ, किसी रचनात्मक, किसी सर्वोदयी, किसी समझदार से सलाह लो कि इसके उलटे में क्या किया जा सकता है? बाप गए, हर गांव में ऐसे लोग हैं, जिनके पास और कोई काम नहीं है, वे रचनात्मक काम वगैराह करते हैं।

बाप ने जाकर पूछा कि हम क्या करें, हम बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं? अगर वह छुरे की धमकी देता तो, हमारे पास इंतजाम था, हमारे पास बंदूक है। लेकिन वह मरने की धमकी देता है, हम क्या करें? उस आदमी ने कहाः घबड़ाओ मत, रात को मैं आऊंगा और वह भाग जाएगा। वह रात को एक बूढ़ी वेश्या को पकड़ लाया, और उस वेश्या ने जाकर उस लड़के के सामने बिस्तर लगा दिया और कहा कि आमरण अनशन करती हूं, तुमसे विवाह करना चाहती हूं। वह रात बिस्तर-विस्तर लेकर लड़का भाग गया, फिर कभी उसका पता नहीं चला।

गांधी जी ने अहिंसात्मक आंदोलन के नाम पर, अनशन के नाम पर जो प्रक्रिया चलाई थी, हिंदुस्तान उस प्रक्रिया से बरबाद हो रहा है। हर तरह की नासमझी उस आंदोलन के पीछे चल रही है। किसी को आंध्र अलग करना है, वे अनशन कर रहे हैं। कुछ भी करना हो, आप दबाव डाल सकते हैं भूखे मर कर, और हिंदुस्तान को टुकड़े-टुकड़े किया जा रहा है, हिंदुस्तान की हर चीज को नष्ट किया जा रहा है, वह एक दबाव मिल गया है आदमी को दबाने का कि हम मर जाएंगे, अनशन कर देंगे। यह सिर्फ हिंसात्मक रुख है, यह अहिंसा नहीं है। जब तक मैं किसी आदमी को जोर-जबरदस्ती से बदलना चाहता हूं, चाहे वह जोर-जबरदस्ती किसी भी तरह की हो, उसका रूप कुछ भी हो, तब तक मैं हिंसापूर्ण हूं।

मैं गांधी जी की अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं, इससे यह मतलब मत लेना कि मैं अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं। अखबार यही छापते हैं कि मैं अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं। मैं गांधी जी की अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं, क्योंकि मैं अहिंसा के पक्ष में हूं। लेकिन उसको मैं अहिंसा नहीं मानता हूं, इसलिए पक्ष में नहीं हूं। गांधी जी की अहिंसा चाहे गांधी जी को पता हो या न हो, हिंसा का ही रूप है। हिंसा के रूप बड़े अदभुत हैं, हिंसा बड़ी सूक्ष्म है, एक

आदमी को मार डालना भी हिंसा है, और एक आदमी को अपनी इच्छा के अनुकूल ढालना भी हिंसा है। जब एक गुरु दस-पच्चीस शिष्यों की भीड़ इकट्ठी करके उनको ढालने की कोशिश करता है, अपने जैसा बनाने की, कि जैसे कपड़े मैं पहना हूं, वैसे कपड़े तुम पहनो; जब मैं उठता हूं ब्रह्ममुहूर्त में, तब तुम उठो; जो मैं करता हूं, वही तुम करो, तो हमें पता नहीं है कि यह चित्त बहुत सूक्ष्म हिंसा के रास्ते खोज रहा है।

दूसरे आदमी को बदलने की चेष्टा में, दूसरे आदमी को अपने जैसा बनाने की चेष्टा में आदमी हिंसा करता है। जब एक बाप अपने बेटे को अपने जैसा बनाने की कोशिश करता है, तो आपको पता है, यह हिंसा है। जब एक बाप कहता है कि मेरे जैसे बनना, तो दो बातें काम कर रही हैं, एक तो बाप का अहंकार कि मैं श्रेष्ठ हूं ही और दूसरा कि तुम मेरे बेटे हो मैं तुम्हें अपने जैसा बना कर छोडूंगा। यह प्रेम नहीं है। यह प्रेम नहीं है। सारे गुरु लोगों को अपने जैसा बनाने की जिस कोशिश में संलग्न होते हैं उस कोशिश में आदमी हिंसा करता है। जो आदमी अहिंसक है वह किसी आदमी को अपने जैसा नहीं बनाना चाहता है। जो आदमी अहिंसक है वह कहता है कि तुम अपने जैसे बन जाओ, बस यही काफी है। मेरे जैसे बनने की कोई जरूरत नहीं। कोई अहिंसात्मक आदमी किसी को अपना अनुयायी नहीं बना सकता है। क्योंकि अनुयायी बनाना सूक्ष्म हिंसा है। कोई आदमी अहिंसात्मक किसी को अपना शिष्य नहीं बना सकता है, क्योंकि गुरुबनने से बड़ी हिंसा दुनिया में खोजनी ब.हुत मुश्किल है। लेकिन ये सूक्ष्म हिंसाएं हैं जो दिखाई नहीं पड़तीं। और यह भी ध्यान रहे कि जब कोई आदमी दूसरों के साथ हिंसा करना बंद कर देता है, तो हिंसा की प्रवृत्ति नष्ट नहीं हो जाती, हिंसा की प्रवृत्ति स्वयं पर लौट आती है, वह अपने साथ हिंसा करना शुरू कर देता है। जिसको हम तपश्चर्या कहते हैं, तप कहते हैं, त्याग कहते हैं; सौ में निन्यानबे मौके पर अपने पर लौटी हुई हिंसा के दूसरे नाम हैं और कुछ भी नहीं। एक आदमी दूसरे को सताना चाहता है।

अंग्रेजी में एक शब्द है, सैडिस्ट, जो आदमी दूसरे को सताना चाहता है, उसको वे कहते हैं, सैडिस्ट। उसको वे कहते हैं परपीड़न वादी। एक दूसरा शब्द है अंग्रेजी में, मैसोचिस्ट, जो आदमी अपने को ही सताने में मजा लेता है, उसको वे कहते हैं, मैसोचिस्ट, आत्मपीड़नवादी। हम दूसरे को सताने वाले को तो हिंसक कहते हैं, लेकिन खुद को सताने वाले को हिंसक नहीं कहते, वह भी हिंसा है। और मजा यह है कि दूसरे को सताने में तो दुनिया बाधा डाल सकती है, स्वयं को सताने में कोई भी बाधा नहीं डाल सकता है। स्वयं को सताने के लिए प्रत्येक आदमी मुक्त है। ये जो तपश्चर्या करने वाले लोग हैं, ये जो कांटों में खड़े लोग हैं, धूप में खड़े लोग हैं, महीनों का उपवास करने वाले लोग हैं, अगर इनकी पूरी कथा आप सुनें और समझें और इनकी, इनकी ईजादें आप पता लगाएं कि कैसे-कैसे अपने को सताने के उपाय निकालते हैं। ऐसे फकीर हुए हैं दुनिया में, ऐसे साधु रहे हैं; कैसे उनको साधु कहें, यह बहुत मुश्किल है? जो अपनी जननेंद्रियां काट लेते रहे हैं। ऐसे साधु रहे हैं जिन्होंने अपनी आंखें फोड़ लीं, और महात्मा हो गए हैं। और ऐसे साधु रहे हैं जो पैर में, जूतों में कीलें लगवाते रहे हैं, ताकि पैर में घाव बनते रहें। कमर में पट्टे बांधते रहे और कीलें लगाते रहे, ताकि कमर में घाव बनते रहें। शरीर को सब तरह से कोड़े मारने वाले साधुओं की लंबी जमात हुई है। वे कोड़े मारने वाले साधु, वे सुबह से उठ कर कोड़े मारेंगे, और जो जितने ज्यादा कोड़े मारेगा उतना बड़ा साधु हो जाएगा। ये सारे के सारे लोग हिंसक लोग हैं। ये अहिंसक लोग नहीं हैं, सिर्फ फर्क इतना है कि इनकी हिंसा दूसरे पर न जाकर स्वयं पर लौट आई है। वह वापस लौटना शुरू हो गई है। अहिंसा बहुत अदभुत बात है, लेकिन हिंसा से बचना बहुत मुश्किल है, हिंसा को बदल लेना बहुत आसान है। हिंसा नये रूपों में खड़ी हो जाती है। दूसरे को बदलने की चिंता, दूसरे को बदलने का दबाव, दूसरे को अपने जैसा बनाने की सारी कोशिश हिंसा है। और दुनिया के सारे गुरुओं को और दुनिया के

उन सारे लोगों को, जो अनुयायियों की भीड़ इकट्ठी करते हैं, संप्रदाय खड़े करते हैं, जमातें खड़ी करते हैं, और अपनी शक्ल के आदमी पैदा करते हैं, उन सबको मैं एक कतार में हिंसक मानता हूं। अहिंसक व्यक्ति बहुत और दूसरी बात है।

अहिंसक का क्या मतलब है? अहिंसक का मतलब हैः जिसके चित्त में सताने की भावना विलीन हो गई, दूसरे को भी, स्वयं को भी। अहिंसक का अर्थ हैः जिसके चित्त से दबाव डालने की कामना विलीन हो गई, छुरे से भी, अनशन से भी। अहिंसक का मतलब हैः ऐसा व्यक्ति जो किसी को भी किसी तरह का दबाव डालने की कामना से मुक्त हो गया है। चूंकि दबाव डाल कर हम दूसरे से श्रेष्ठ हो जाते हैं। और आपने कभी ख्याल किया है, छुरा बता कर आप दूसरे से श्रेष्ठ नहीं होते, लेकिन अनशन करके आप दूसरे से श्रेष्ठ हो जाते हैं।

नीत्शे ने मजाक में एक बात कही है जीसस के खिलाफ। और कहा है कि जीसस ने कहा है कि कोई गाल पर तुम्हारे चांटा मारे, तो तुम दूसरा गाल कर देना। नीत्शे ने कहा कि इससे ज्यादा अपमान दूसरे आदमी का और क्या हो सकता है? तुमने उसे आदमी भी न माना, अपने बराबर भी न माना। किसी ने चांटा मारा तुम्हारे गाल पर, तुमने दूसरा गाल कर दिया। उस दूसरे आदमी से तुम एकदम देवता हो गए, वह आदमी जमीन का कीड़ा हो गया। नीत्शे ने मजाक में कहा है कि दूसरे आदमी का इससे बड़ा अपमान और क्या हो सकता है? और यह हो सकता है कि कोई आदमी प्रेम के कारण दूसरा गाल न करे, सिर्फ इसलिए गाल दूसरा कर दे कि देख लो तुम क्या हो जमीन के कीड़े और हम हैं फरिश्ते, हम हैं देवता!

दूसरे से ऊंचा होने की तरकीबें इतनी बारीक हैं कि एक आदमी दूसरे से ऊंचा हो सकता है सिंहासन पर बैठ कर और एक आदमी दूसरे से ऊंचा हो सकता है त्याग करके। लेकिन दूसरे से ऊंचा होने की कामना अगर भीतर शेष है, तो वह कामना हिंसा में ले जाती है अहिंसा में नहीं। जब भी हम दूसरे पर दबाव डालते हैं तब हम दूसरे से ऊपर होने की चेष्टा में संलग्न हो जाते हैं--चाहे हमें ज्ञात हो और चाहे ज्ञात न हो; चाहे हमें कांशसली पता हो और चाहे अनकांशस माइंड काम कर रहा हो, चाहे अचेतन मन काम कर रहा हो हमें पता न हो। लेकिन दूसरे को बदलने की कोशिश में स्वयं की श्रेष्ठता भीतर अनुभव होनी शुरू हो जाती है।

मैं इस सबके बुनियादी रूप से खिलाफ हूं, मैं मानता हूं कि व्यक्ति प्रार्थना कर सकता है, ध्यान कर सकता है, व्यक्ति अंतस को शुद्ध कर सकता है, और उसके अंतस की शुद्धि के कारण उसके चारों तरफ की हवाओं में परिवर्तन शुरू हो जाएगा, लेकिन वह परिवर्तन उस व्यक्ति की चेष्टा चाही हुई चेष्टा नहीं है, उस व्यक्ति का प्रयास और प्रयत्न नहीं है। महावीर और बुद्ध भी अहिंसक हैं, गांधी की अहिंसा से मैं उनकी अहिंसा को श्रेष्ठतर और शुद्धतर मानता हूं। गांधी और महावीर, गांधी और बुद्ध के बीच हम तौल करें, तो कुछ बातें पता चलेंगी, महावीर और बुद्ध किसी को बदलने के लिए कोई अनशन आंदोलन नहीं कर रहे हैं, लेकिन भीतर हृदय शुद्ध हुआ हो, भीतर कामना उदित हुई हो, तो उसकी किरणें आना चाहेंगी, बिना प्रयास के चारों तरफ बदलाहट लाना शुरू करती हैं। अहिंसक आदमी ने दुनिया को पहले भी अपनी अहिंसा से किरणें दी हैं, लेकिन वह किरणें चाह कर नहीं दी गई हैं और चेष्टा करके नहीं दी गई हैं। वे किरणें उपलब्ध होती हैं। सूरज निकलता है और अंधेरा विलीन होने लगता है। सूरज कोई घोषणा नहीं करता कि अंधेरे को दूर करने के लिए मैं आ गया हूं, अंधेरा सावधान!

बल्कि मैंने तो एक कहानी सुनी है, मैंने सुना है, एक बार अंधेरे ने भगवान से जाकर कहा कि तुम्हारा सूरज मेरे पीछे बहुत बुरी तरह पड़ा हुआ है, रोज सुबह मुझे खदेड़ना शुरू करता है, सांझ तक मैं थक जाता हूं भागते-भागते, कहां-कहां छिपूं, चांद-तारों पर कहां जाऊं? जहां जाता हूं वहीं तुम्हारा सूरज पहुंच जाता है।

सांझ थका-मांदा सो भी नहीं पाता सुबह तक कि फिर तुम्हारा सूरज द्वार पर खड़ा हो जाता है। यह क्या पागलपन है? मैंने इसका क्या बिगाड़ा है? भगवान ने कहाः यह तो बहुत ज्यादती हो रही है। तूने इतने दिन पहले आकर कहा क्यों नहीं? सूरज को बुलाया और कहा कि तू अंधेरे के पीछे क्यों पड़ा है? सूरज ने कहाः अंधेरा? मेरी अब तक उससे कोई मुलाकात ही नहीं हुई, मैं पीछे क्यों पडूं? मैं उसे पहचानता भी नहीं हूं। अंधेरा कहां है? मैंने आज तक उसे देखा नहीं है। मैं देखना चाहूंगा। सारे जगत में घूमती हैं मेरी किरणें लेकिन अंधेरा मुझे आज तक नहीं मिला। वह है कहां? आप उसे मेरे सामने बुला दें, तो मैं पहचान भी लूं कि अनजाने में कोई भूल फिर न हो, और क्षमा भी मांग लूं पीछे की गई भूलों के लिए।

कहते हैं कि वह मामला फाइल में ही पड़ा है भगवान की। अभी तक वह अंधेरे को सूरज के सामने नहीं ला पाए हैं। और आगे भी ला पाएंगे इसकी उम्मीद नहीं है। अंधेरे को सूरज के सामने कैसे लाया जा सकता है? जहां सूरज है, वहां अंधेरा नहीं है। जब हृदय में अहिंसा का जन्म होता है, तो चारों तरफ उस अहिंसा के प्रकाश से हिंसा परिवर्तित होती है; परिवर्तित करनी नहीं पड़ती। इस फर्क को बहुत ख्याल से ले लेना। अहिंसा परिवर्तन लाती है, अहिंसा परिवर्तन करती नहीं। अहिंसा से परिवर्तन आता है, अहिंसक परिवर्तन चाहता नहीं।

गांधी की अहिंसा में परिवर्तन की चाह बहुत स्पष्ट है इसलिए उसे मैं अहिंसा नहीं मानता हूं। गांधी की अहिंसा में मेरी कोई श्रद्धा, कोई विश्वास नहीं है क्योंकि वह अहिंसा ही मुझे दिखाई नहीं पड़ती। मैं कोई हिंसा का पक्षपाती नहीं हूं। मुझसे ज्यादा हिंसा का दुश्मन खोजना कठिन है। क्योंकि अहिंसा में भी मुझे जहां हिंसा दिखाई पड़ती हो उस अहिंसा से भी मैं राजी नहीं रहा हूं।

एक दूसरे मित्र ने इसी संबंध में पूछा है कि आप कहते हैंः क्रांति अहिंसक ही हो सकती है, लेकिन उन मित्र ने पूछा है कि क्रांति तो सदा हिंसक होती है, अहिंसक क्रांति तो कभी नहीं होती?

जिस क्रांति में हिंसा है उसे मैं क्रांति नहीं कहता। वह क्रांति नहीं है, सिर्फ उपद्रव है। उपद्रव और क्रांति में बहुत फर्क है। जिस क्रांति के साथ हिंसा जुड़ गई, वह क्रांति खत्म हो गई। हिंसा के कारण ही खत्म हो गई। क्योंकि क्रांति का अंतिम अर्थ क्या है? क्रांति का अंतिम अर्थ हैः आत्मिक परिवर्तन, हार्दिक परिवर्तन। लोगों के चित्त का, लोगों की चेतना का बदल जाना। और जब हम लोगों की चेतना को नहीं, नहीं बदल पाते हैं, जब लोगों की चेतना नहीं बदलती है, तब हम हिंसा पर उतारू हो जाते हैं। लेकिन जो आदमी हिंसा पर उतारू हो जाता है, वह लोगों की चेतना बदल सकेगा?

स्टैलिन ने एक करोड़ लोगों की कम से कम हत्या की अपने शासन में। एक करोड़ लोगों की हत्या करके भी क्या रूपांतरण हो गया? हिटलर ने भी करीब अस्सी लाख लोगों की हत्या की, लेकिन क्या रूपांतरण हो गया? क्या हो गया? कौन सी क्रांति हो गई? सामान बांट दिया गया, संपत्ति व्यक्तिगत न रही, यह एक करोड़ लोगों को बिना मारे भी हो सकता था। और एक करोड़ लोगों को मारने के कारण यह जो परिवर्तन हुआ इतना तनावपूर्ण है कि जब तक हिंसा ऊपर छाती पर सवार रहे, तभी तक इसको कायम रखा जा सकता है। हिंसा शिथिल हुई कि नीचे का परिवर्तन विलीन होना शुरू हो जाएगा।

स्टैलिन के जाने के बाद रूस के कदम पूंजीवाद की तरफ निश्चित रूप से उठे हैं। स्टैलिन के हटते ही जैसे हिंसा कम हुई है, रूस के कदम पूंजीवाद की तरफ उठे हैं। रूस में व्यक्तिगत संपत्ति का पुनआर्गमन हुआ है। रूस में आज फिर कार व्यक्तिगत रूप से रखी जा सकती है, जिसकी वहां कल तक कोई कल्पना नहीं थी। मकान भी

व्यक्तिगत हो सकता है। तनख्वाहों में भी फर्क पैदा हुआ है। जैसे ही हिंसा हटेगी हिंसा से लाई हुई क्रांति विलीन हो जाएगी। हिंसा से लाई गई क्रांति जबरदस्ती है। और जबरदस्ती कहीं क्रांतियां लाई जा सकती हैं? जबरदस्ती थोड़ी-बहुत देर किसी को रोका जा सकता हो, और ध्यान रहे, जिस चीज को जबरदस्ती से रोकना पड़ता है उसके खिलाफ लोगों के मन में विद्रोह शुरू हो जाता है। अच्छा काम भी अगर जबरदस्ती करवाना पड़ा... आप यहां बैठे हैं, आप अपनी मौज से यहां आए हैं, और अगर आपको अभी खबर की जाए कि अब दो घंटे तक आप बाहर नहीं निकल सकते हैं, बाहर पुलिस लगी है, बस यहां बैठना असंभव हो जाएगा, विद्रोह शुरू हो जाएगा। आदमी के पास आत्मा है, आदमी की आत्मा दबाव को इनकार करती है, और करना चाहिए। चाहे वह दबाव अच्छे के लिए ही क्यों न डाला गया हो। दबाव दबाव है। आदमी के अच्छे के लिए भी दबाव डालने पर आदमी विद्रोह करता है।

आपको पता है, अच्छे मां-बाप अपने बेटों को बिगाड़ने का बुनियादी कारण बनते हैं। पता है आपको क्यों? अच्छे मां-बाप जबरदस्ती बच्चों को अच्छा बनाने की कोशिश करते हैं। दुनिया में कभी किसी को जबरदस्ती अच्छा नहीं बनाया जा सकता। और जो मां-बाप अपने बच्चों को जबरदस्ती अच्छा बनाते हैं, वह मां-बाप अपने बच्चों के दुश्मन हैं। और अपने बच्चों को बिगाड़ने का कारण बनते हैं। क्योंकि बच्चे विद्रोह करना शुरू करते हैं। बच्चों के पास भी अपनी आत्मा है, वे इनकार करना चाहते हैं जबरदस्ती को। और अगर अच्छे के लिए जबरदस्ती की गई तो फिर अच्छे को भी इनकार करना चाहते हैं। क्योंकि जबरदस्ती के इनकार में फिर अच्छे का इनकार भी शुरू हो जाता है। दुनिया में कभी कोई अच्छी बात जबरदस्ती से नहीं लाई जा सकती। और जबरदस्ती से लाने का मतलब यह है कि लाने वाले बहुत कमजोर हैं, लोगों को समझा नहीं पाते हैं। लोगों के हृदय को, मस्तिष्क को राजी नहीं कर पाते हैं, और अगर आप लोगों को राजी नहीं कर पाते हैं, उनके अच्छे के लिए ही, तो फिर आपकी वह अच्छाई बड़ी संदिग्ध है।

दुनिया में कोई क्रांति हिंसा से न हुई है, न हो सकती है। हां, क्रांति के नाम से हिंसा चलती रही है। लेकिन अब तक कौन सी क्रांति हो गई है दुनिया में? दुनिया क्रांति की प्रतीक्षा कर रही है, उस क्रांति की जो सहज आएगी, जो सुंदर होगी, सरल होगी, हृदय से होगी, उस क्रांति की प्रतीक्षा में जिस क्रांति में दमन नहीं होगा, जिस क्रांति में छाती पर संगीन नहीं होगी; जो क्रांति भीतर से फूल की तरह खिलेगी और व्यक्तित्व को बदल देगी; मनुष्यता उस क्रांति की प्रतीक्षा कर रही है। फ्रांस की कं्राति असफल हो गई, क्योंकि वह हिंसा पर खड़ी थी। रूस की क्रांति सफल नहीं हो सकी, क्योंकि वह हिंसा पर खड़ी थी। माओ जो कं्राति कर रहा है चीन में वह सफल नहीं होगी, क्योंकि वह हिंसा पर खड़ी है। गांधी की क्रांति जो कि बहुत अर्थों में अहिंसात्मक दिखाई पड़ती थी, वह भी असफल हो गई क्योंकि बुनियाद में उसके हिंसा थी। हम देख रहे हैं अपने मुल्क में गांधी की क्रांति जो कि स्टैलिन से लाख दर्जे बेहतर क्रांति है, माओ से हजार गुनी बेहतर क्रांति है, जिसमें अहिंसा की तरफ एक रुख है, एक ख्याल है, यद्यपि वह अहिंसात्मक नहीं है बुनियाद में, हिंदुस्तान में वह असफल हो गई। बाईस साल की आजादी की कथा बताती है कि गांधी की क्रांति असफल हो गई। गांधी तक की क्रांति असफल हो जाती है। क्योंकि मेरा मानना है कि उसमें भी दबाव और बदलने की तीव्र आकांक्षा है। तो फिर लेनिन और स्टैलिन और माओ इनकी क्रांतियां तो कैसे सफल हो सकती हैं?

दुनिया प्रतीक्षा कर रही है एक क्रांति की, जो क्रांति चेतना की और अहिंसा की क्रांति होगी। लेकिन उस क्रांति की तैयारी में सबसे बड़ी बाधा क्या है, सबसे बड़ी बाधा हिंसा में आस्था है। जिन लोगों की हिंसा में आस्था है वे लोग दुनिया के चित्त को बदलने के अहिंसात्मक दिशा में सोचते भी नहीं, विचार भी नहीं करते,

चिंता भी नहीं करते, उस दिशा में कोई काम भी नहीं करते। हमें यह ख्याल ही नहीं है कि अगर एक गांव में एक हजार लोग, पचास लाख के गांव में एक हजार लोग भी अगर अहिंसात्मक हों, तो पचास लाख लोगों के चित्त में बुनियादी रूपांतरण शुरू हो जाएगा। लेकिन हमें इसका कुछ पता नहीं।

अभी रूस में फयादेव ने एक प्रयोग किया। फयादेव एक रूसी वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक। और चूंकि प्रयोग रूस में हुआ है, इसलिए महत्वपूर्ण है। हिंदुस्तान का योगी तो बहुत दिन से यह कहता है, लेकिन कोई सुनता नहीं। हिंदुस्तान का योगी यह कहता है कि विचार की इतनी बड़ी शक्ति है कि अगर कोई विचार किसी व्यक्ति के हृदय में पूर्ण संकल्प से स्थापित हो जाए, तो चारों तरफ उस विचार की तरंगें फैलनी शुरू हो जाती हैं। और हजारों लोगों के हृदय को रूपांतरित कर देती हैं। एक बुद्ध का पैदा होना, एक महावीर का खड़ा होना इतनी बड़ी क्रांति है, जिसका कोई हिसाब नहीं, जिसका हमें पता नहीं चलता, क्योंकि लाखों लोगों के प्राण-कमल उनकी किरणों से खिलने शुरू हो जाते हैं।

फयादेव ने एक प्रयोग किया रूस में, विचार संक्रमण का, टेलीपैथी का। विचार को दूर भेजने का। उसने मास्को में बैठ कर तिफलिस के गांव में एक हजार मील दूर विचार का संक्रमण किया। मास्को में बैठा है फयादेव अपनी लेबोरेटरी में और एक हजार मील दूर तिफलिस के बगीचे में, पब्लिक पार्क में उसके आठ-दस मित्र एक झाड़ी के पीछे छिपे बैठे हैं, उन्होंने वहां से फोन किया कि दस नंबर की बैंच पर एक आदमी आकर बैठा है, आप अपने विचार से प्रभावित करके उसे सुला दें। फयादेव एक हजार मील दूर बैठ कर कामना करता है मन में कि वह जो आदमी दस नंबर की बैंच पर हजार मील दूर बैठा है, वह सो जाए, सो जाए, सो जाए। यहां वह पूर्ण संकल्प से, पूर्ण एकाग्र चित्त से यह कामना करता है, वह आदमी तीन मिनट के भीतर वहां बैंच पर आंख बंद करके सो जाता है। लेकिन हो सकता है यह संयोग की बात हो, दोपहर का थका-मांदा आदमी, ऐसे ही सो गया हो। तो मित्र फोन करते हैं, वह आदमी सो तो गया जरूर, तुमने कहा था तीन मिनट में सो जाएगा, तो तीन मिनट में सो गया है, लेकिन यह संयोग भी हो सकता है। आप उसे ठीक पांच मिनट के भीतर वापस उठा दें, तो हम समझेंगे। फयादेव यहां से फिर सुझाव भेजता है कि उठो, उठो, जागो, जाग जाओ। ठीक पांच मिनट में जाग जाओ, वह आदमी पांच मिनट में आंख खोल कर बैठ जाता है। मित्र उसके पास जाकर पूछते हैं कि आपको कुछ... कुछ अजीब सा तो नहीं लगा? वह आदमी कहता है, अजीब सा निश्चित लगा, मैं जब आया तो मुझे अचानक ऐसा लगा कि जैसे मेरे पूरे प्राण कह रहे हैं कि सो जाओ, मैं रात अच्छी तरह सोया हूं, थका-मांदा नहीं हूं, लेकिन पूरा व्यक्तित्व कहता है कि सो जाओ। फिर मैं सो गया। लेकिन अभी घड़ी भर, क्षण भर पहले एकदम से आवाज आनी शुरू हुई कि उठो, एकदम उठ जाओ, पांच मिनट के भीतर उठ जाओ। मैं बहुत हैरान हूं कि यह क्या हुआ? एक हजार मील दूर विचार संक्रमित हो गया।

अभी अमरीका की एक प्रयोगशाला में एक और अदभुत प्रयोग हुआ, जो मैं आपसे कहना चाहूं। वह प्रयोग भी बहुत बहुमूल्य है आने वाले भविष्य में। अंतरिक्ष में जाने वाले प्रयोग भी उसके मुकाबले कम मूल्य के सिद्ध होंगे। एटम और हाइड्रोजन का प्रयोग भी कम मूल्य का सिद्ध होगा। वह प्रयोग बहुत अदभुत है। एक प्रयोगशाला में उन्होंने विचार का चित्र पहली बार लिया है। विचार का चित्र! जो विचार आपके भीतर चलता है, वह फोटोग्राफ विचार का; आपका नहीं। एक आदमी को बहुत सेंसेटिव कैमरे के सामने बैठाया गया, बहुत ही संवेदनशील फिल्म लगाई गई है और उस आदमी से कहा गया है कि वह एक विचार पर सारे चित्त को एकाग्र करके सोचता रहे, बस एक ही चित्र पर विचार करे। और उस आदमी ने एक ही चित्र पर विचार किया। वह आदमी एक छुरे के चित्र पर अंदर विचार करता रहा, एक छुरे को देखता रहा और फोटो की फिल्म ने छुरे को

पकड़ लिया। इसका क्या मतलब? इसका मतलब है कि विचार में जो चित्र था भीतर, उसका संप्रेषण, उसकी किरणें, उसकी तरंगें बाहर फिंक रही हैं, जो कि फोटो की फिल्म पकड़ सकती है।

अहिंसात्मक क्रांति का क्या अर्थ है? अहिंसात्मक क्रांति का अर्थ हैः अहिंसात्मक लोग। थोड़े से लोग भी अहिंसात्मक हों, तो उनके व्यक्तित्व से जो अहिंसा की, जो प्रेम की, जो जीवन-परिवर्तन की किरणें पहुंचेंगी, वह लाखों लोगों के जीवन में क्रांति ले आएंगी। जिसका हमें पता भी नहीं हो सकता।

मेरी मान्यता है कि मनुष्य-जाति अहिंसात्मक क्रांति की प्रतीक्षा कर रही है, और यह प्रतीक्षा जारी रहेगी जब तक कि अहिंसात्मक क्रांति नहीं हो जाती। हम कितनी ही हिंसात्मक क्रांतियां करें, उनसे कोई परिवर्तन नहीं होगा। परिवर्तन होगा, जैसे कोई आदमी मुर्दे को मरघट ले जाते हैं, मुर्दे को मरघट ले जाते वक्त अरथी को कंधे पर ढोते हैं, रास्ते में कंधा थक जाता है तो अरथी उठा कर दूसरे कंधे पर रख लेते हैं, बस इसी तरह की क्रांतियों से फर्क पड़ता है। एक कंधा दुखने लगा दूसरे कंधे पर बोझ रख लिया, थोड़ी दूर तक राहत मिलती है फिर बोझ शुरू हो जाता है, दूसरे कंधे पर बोझ शुरू हो जाता है। अब तक जितनी क्रांतियां हुई हैं उन्होंने सिर्फ बोझ बदला है, बोझ मिटाया नहीं, आदमी के समाज को रूपांतरित नहीं किया, आदमी के समाज को पुराने गठन में नयापन दे दिया है। फिर जिंदगी वही की वही हो गई। पुरानी बीमारियां फिर शुरू हो जाती हैं, नई शक्लें ले लेती हैं।

रूस में क्रांति हुई। शायद सबसे महत्वपूर्ण क्रांति दुनिया की वही है। रूस में क्रांति हुई इसलिए कि वर्ग मिटा दिए जाएंगे, क्लासेस नहीं होंगी। वर्ग मिटा दिए गए पुराने। निश्चित मिटा दिए गए। अमीर आज रूस में नहीं हैं। गरीब आज रूस में नहीं हैं। लेकिन नया वर्ग पैदा हो गया है--आफिसर, कम्युनिस्ट पार्टी का आदमी, और एक वह आदमी जो कम्युनिस्ट पार्टी का नहीं है--सामान्य, साधारण। दो वर्ग फिर पैदा हो गएः अधिकारी, सत्ताधिकारी और सत्ता-शून्य। कल था धनिक और निर्धन, आज है सत्ताधिकारी और सत्ता-शून्य। उनके बीच फासला वही है। वर्ग फिर नये खड़े हो गए। रूस में जो क्रांति हुई, उस क्रांति से वर्ग मिटे नहीं, सिर्फ वर्ग बदल गए। पूंजीपति की जगह मैनेजर आ गया है। वह क्रांति मैनेजेरियल है। व्यवस्थापकों की क्रांति है, व्यवस्थापक बदल गए। जहां मालिक था वहां मैनेजर बैठ गया है। सत्ताधिकारी बैठ गया धनी की जगह।

और ध्यान रहे, धनी के पास इतनी ताकत कभी नहीं थी जितनी सत्ताधिकारी के पास है। धनी के हाथ में लोगों की गर्दन कभी इतनी नहीं थी जितनी आज कम्युनिस्ट पार्टी के पास रूस में है। जितनी स्टैलिन के पास ताकत है, उतनी बिरला के पास थोड़े ही है? नहीं हो सकती। सत्ता बदल गई, वर्ग बदल गए, नये वर्ग आ गए। क्रांति मर गई। क्रांति का कोई अर्थ न हुआ, सिर्फ कंधा बदल गया। दुनिया में अब तक क्रांतियों के नाम से कंधे बदलते रहे हैं। क्या हम कंधे ही बदलते रहेंगे या सच में कोई क्रांति करेंगे? अगर क्रांति करनी है, तो हिंसा की आस्था छोड़ देनी पड़ेगी। हिंसा से सिर्फ कंधे बदलते हैं। क्योंकि जो आदमी हिंसा करता है, वह आदमी जब मालिक हो जाता है, तब वह फिर हिंसा जारी रखता है। और उसकी जो हिंसा जारी रहती है, और जिस आदमी ने हिंसा की है, और जिसके हाथ में हिंसा की ताकत है, वह आदमी... उस आदमी के द्वारा हम कभी आशा नहीं कर सकते कि वह आदमी हिंसा को छोड़ देगा, हिंसा को बदल लेगा। वह आदमी वही रहेगा।

रूस में जिन लोगों के हाथ में ताकत आई, वे लोग अच्छे थे, क्रांति के पहले सभी लोग अच्छे होते हैं, क्रांति के बाद जब ताकत हाथ में आती है, तब पता चलता है कि कौन आदमी अच्छा है, कौन आदमी बुरा है? संभावना इस बात की है कि स्टैलिन ने ही लेनिन को जहर देकर मारा। और इस बात की संभावना है कि जितने

लोग क्रांति के अग्रणी थे, धीरे-धीरे करके एक-एक मारे गए। मैक्सिको में जाकर प्रोटेस्की की हत्या की गई। जिन लोगों ने क्रांति की थी, स्टैलिन ने चुन-चुन कर एक-एक को मारा। क्योंकि अब सत्ता का खिलवाड़ शुरू हो गया।

हिंदुस्तान में कितने अच्छे लोगों ने गांधी के साथ क्रांति की थी, कितने अच्छे और भले लोग मालूम पड़ते थे, एकदम सफेद धुले हुए मालूम पड़ते थे। फिर जब सत्ता हाथ में आई, तो पता चला कि वे लोग बदल गए, वे दूसरे आदमी साबित हुए। वे कपड़े ही सफेद थे, वे आदमी भीतर सफेद नहीं थे। क्या हो गया सत्ता के हाथ में आते ही? सत्ता के हाथ में आते ही भीतर का असली आदमी प्रकट होता है। जब तक ताकत नहीं होती तब तक असली आदमी प्रकट नहीं होता। अगर आपके पास पैसे नहीं हैं, तो आप फिजूलखर्च हैं इसका कोई पता नहीं चलता, पैसे हों तो पता चलता है कि फिजूलखर्च हैं या नहीं। अगर आपके हाथ में छुरा हो, मारने की सुविधा हो, तब पता चलेगा कि आप हिंसक हैं या नहीं? जब आपके हाथ में ताकत नहीं है, तब तो सभी लोग अहिंसक होते हैं। अहिंसक का पता चलता है अवसर मिलने पर, हिंसा का अवसर मिलने पर।

जिन लोगों के हाथ में इस मुल्क में ताकत गई, ताकत जाने के बाद पता चला कि उनकी असली तस्वीर क्या थी? तो जिन लोगों के हाथ में ताकत जाएगी, अगर वे हिंसा के द्वारा ताकत में पहुंचे हैं, तब तो उनकी तस्वीर पहले से ही हिंसा की है। और बाद में उनकी क्या हालत होगी, अहिंसकों की हालत हिंसा की हो जाती है, तो हिंसकों की हालत क्या होगी?

नहीं, हिंसा से कोई क्रांति नहीं हो सकती। सिर्फ बोझ बदल जाते हैं, सिर्फ शक्ल बदल जाती है, नाम बदल जाते हैं, समाज पुराना का पुराना ही जारी रहता है। पांच हजार वर्ष के लंबे प्रयोगों के बाद भी हमें दिखाई नहीं पड़ता कि हिंसा से कोई क्रांति नहीं हो सकी है, आगे भी नहीं हो सकेगी। और अगर आदमी हिंसा से जाग जाए, डिसइलुजनमेंट हो जाए कि हिंसा से कुछ भी नहीं हो सकता, दबाव से कुछ भी नहीं हो सकता, जबरदस्ती कुछ भी नहीं हो सकता, आदमी की आत्मा स्वतंत्रता चाहती है, और आदमी की आत्मा प्रेम चाहती है, और आदमी की आत्मा रूपांतरित होना चाहती है, लेकिन उन लोगों के द्वारा जो रूपांतरित करने के लिए उत्सुक, आतुर नहीं हैं, जिनका कोई आग्रह नहीं है। जो जीते हैं सत्य में, जो जीते हैं प्रेम में, और उनके जीने के कारण जो किरणें फैलती हैं, उनसे रूपांतरण होता है। ऐसे रूपांतरण की प्रतीक्षा है मनुष्यता को। ऐसी क्रांति अहिंसात्मक ही हो सकती है।

यह बहुत स्पष्ट रूप से मेरी बात समझ लेनी जरूरी हैः मैं हिंसा के बिल्कुल विरोध में हूं। हिंसा के कौन पक्ष में हो सकता है? कौन बुद्धिमान, कौन विचारशील व्यक्ति हिंसा के पक्ष में हो सकता है? हिंसा के पक्ष में होने का मतलब हैः आदमी के भीतर बुद्धि नहीं है। क्योंकि लाठी पर केवल वे ही उतरते हैं जिनके पास बुद्धि नहीं होती। जिनके पास बुद्धि होती है, उन्हें लाठी पर उतरने की जरूरत नहीं पड़ती। जो लोग भी हाथ की ताकत में और तलवार की ताकत में विश्वास करते हैं, वे मनुष्य से नीचे दर्जे के मनुष्य हैं। उनके भीतर पशु मौजूद है, वह पशु ही हिंसा में विश्वास करता है। आदमी हिंसा में कैसे विश्वास कर सकता है? और पशुओं के हाथ में बहुत बार सत्ता दी गई है और आदमी ने हर बार दुख भोगा है। आगे भी पशुओं के हाथ में सत्ता नहीं जानी चाहिए। पाश्विक हाथों में, हिंसक हाथों में सत्ता नहीं जानी चाहिए। इसलिए आदमी जितना सजग हो, जितना अहिंसा के सार को समझे, जितना अहिंसा के रहस्य को समझे उतना अच्छा है।

अहिंसा का सार क्या है? एक शब्द में अहिंसा का सार है--प्रेम। अहिंसा शब्द बहुत गलत है। क्योंकि नकारात्मक है, उससे पता चलता है हिंसा नहीं, वह शब्द अच्छा नहीं है। शब्द है वास्तविक--प्रेम, क्योंकि प्रेम

पाजिटिव है, प्रेम विधायक है। जब हम कहते हैं, अहिंसा, तो उससे मतलब होता हैः हिंसा नहीं करनी है। लेकिन हिंसा नहीं करनी है, इससे यह सिद्ध नहीं होता कि प्रेम करना है।

हिंदुस्तान में जैनों की लंबी कतार है। वे सब अहिंसा को मानते हैं। उनकी अहिंसा का मतलब हैः पानी छान कर पीना है। उनकी अहिंसा का मतलब हैः रात खाना नहीं खाना है। उनकी अहिंसा का मतलब हैः किसी को चोट नहीं पहुंचानी है। लेकिन ऐसी अहिंसा बड़ी नपुंसक है, जो सिर्फ दूसरे को दुख पहुंचाने से बचती है। असली अहिंसा वह होगी जो दूसरे को सुख पहुंचाना चाहती है। दूसरे को दुख नहीं पहुंचाना है, यह काफी नहीं है, यह बहुत लचर, अधकचरी अहिंसा है। दूसरे को सुख पहुंचाना है। और क्यों पहुंचाना है दूसरे को सुख? इसलिए कि मोक्ष जाना है? इसलिए कि स्वर्ग पाना है? जो आदमी दूसरे को इसलिए दुख नहीं पहुंचाता कि उसे स्वर्ग जाना है, मोक्ष जाना है, वह आदमी हद दर्जे का बेईमान है। वह आदमी हद दर्जे का स्वार्थी है, उस आदमी को दूसरे से कोई मतलब नहीं है। वह दूसरे को और दूसरे की अहिंसा को सीढ़ी बना रहा है, अपने स्वर्ग जाने की।

मैंने सुना है कि चीन के एक गांव में एक बड़ा मेला भरा हुआ था। एक कुआं था मेले के पास, जिस पर पाट नहीं थी, और एक आदमी भूल से उस कुएं के भीतर गिर गया। वह आदमी बहुत चिल्लाने लगा, लेकिन मेले में बहुत भीड़ थी, कौन उसकी सुनता? एक बौद्ध भिक्षु उस कुएं के पास पानी पीने को रुका। नीचे से आदमी चिल्लाया कि भिक्षुजी, मुझे बचाइए! उस भिक्षु ने कहाः पागल किस-किस को बचाया जा सकता है, पूरा संसार ही कुएं में पड़ा है? जीवन ही दुख है, भगवान ने कहा है, पढ़ा नहीं तूने कि जीवन दुख का मूल है? हम सभी दुख में पड़े हैं, कौन किसको बचा सकता है? उस आदमी ने कहा कि ये ज्ञान की बातें पहले मुझे निकाल लो फिर करना, क्योंकि ज्ञान की बातें कुएं में गिरे आदमी को अच्छी नहीं मालूम पड़ती। कृपा करो पहले मुझे बाहर निकाल लो। उस भिक्षु ने कहाः पागल, कौन किसको निकाल सकता है? अपना ही अपना सम्हाल ले आदमी तो काफी है। क्योंकि भगवान ने कहा है, कोई किसी का सहारा नहीं है। अपने सहारे बनो। उसने कहाः वह मैं सब समझता हूं, लेकिन अभी मैं कैसे अपना सहारा बन सकता हूं, मैं डूब रहा हूं, तैरना नहीं जानता हूं, मुझे किसी तरह बाहर निकाल लो फिर तुम्हारा शास्त्र भी सुनूंगा, तुम्हारा प्रवचन भी सुनूंगा। उस भिक्षु ने कहाः लेकिन शायद तुझे पता नहीं कि भगवान ने शास्त्र में यह भी कहा है कि अगर मैं तुझे बचा लूं और कल तू हत्या कर दे, चोरी कर ले, तो मैं भी तेरे कर्म का भागी हो जाऊंगा, न मैं तुझे बचाता, न यह होता! मैं अपने रास्ते पर, तू अपने रास्ते पर, भगवान तेरा भला करे। वह भिक्षु चला गया, शास्त्रों को मानने वाले लोग इतने ही खतरनाक होते हैं। उनको शास्त्र ज्यादा महत्वपूर्ण है, मरता हुआ आदमी ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है।

उसके पीछे ही कनफ्यूशियस को मानने वाला एक दूसरा भिक्षु आकर रुका। उसने भी नीचे झांक कर देखा, उस आदमी ने चिल्लाया कि मुझे बचाओ, मैं मर रहा हूं, अब बस मेरी आखिरी ही स्थिति है। सांसें टूटी जाती हैं, हिम्मत मेरी उखड़ी जाती है। कनफ्यूशियस के शिष्य ने कहा कि देख! तेरे गिरने से साबित हो गया कि कनफ्यूशियस ने जो लिखा है वह सही है। कनफ्यूशियस ने लिखा है कि हर कुएं पर पाट होनी चाहिए। और जिस कुएं पर पाट नहीं होती और जिस राज्य में कुएं पर पाट नहीं होती, वह राजा ठीक नहीं है। तू घबड़ा मत, हम आंदोलन करेंगे। और हर कुएं पर पाट बनवा कर रहेंगे। उस आदमी ने कहाः वह जब बनेगी बनेगी, लेकिन मैं तो गया।

आंदोलन करने वालों को आदमी से कोई मतलब नहीं है, उन्हें आंदोलन से मतलब है, वे आंदोलन करेंगे। और यह जो आदमी डूब रहा है, यह गया। उसने बहुत चिल्लाया, लेकिन उसने, कहां सुनने वाला था,

आंदोलनकारी किसी की सुनते हैं। वह जाकर मंच पर खड़ा हो गया और मेले में लोगों को समझाने लगा कि देखो, कनफ्यूशियस ने जो लिखा है ठीक लिखा है। सबूत, वह कुआं सबूत है। हर कुएं पर पाट होनी चाहिए। जब तक कुएं पर पाट नहीं तब तक राज्य स्वराज्य नहीं है।

उसके पीछे ही एक इसाई मिशनरी वहां आया। उसने भी झांक कर देखा, वह आदमी चिल्ला भी नहीं पाया था, उसने अपने झोले से रस्सी निकाली, रस्सी डाली, कूद कर नीचे गया, उस आदमी को निकाल कर बाहर लाया। उस आदमी ने कहा कि आप ही एक भले आदमी मालूम पड़ते हैं, लेकिन आश्चर्य कि आप झोली में रस्सी पहले से ही रखे हुए थे? उसने कहाः हम सब इंतजाम करके निकलते हैं। क्योंकि सेवा ही हमारा कार्य है। और हमें पहले से पता रहता है कि कोई न कोई तो कुएं में गिरेगा। और जीसस ने कहा है कि अगर मोक्ष जाना है, अगर ईश्वर का राज्य पाना है, तो लोगों की सेवा करो। सेवा के बिना कोई मोक्ष नहीं जा सकता। हम मोक्ष की खोज कर रहे हैं। तुमने बड़ी कृपा की जो तुम कुएं में गिरे। अपने बच्चों को भी समझा जाना कि वह सदा कुओं में गिरें ताकि हमारे बच्चे उनको निकाल कर मोक्ष पा सकें।

यह जो, यह जो आदमी है, ये जो मोक्ष जाने के लिए लोगों का कुएं में गिरने की प्रतीक्षा कर रहे हैं, ये आदमी हद दर्जे के स्वार्थी हैं। इन्हें न कोढ़ियों से मतलब है, न बीमारों से, न गरीबों से; ये सबको सीढ़ियां बना कर अपना मोक्ष खोज रहे हैं। ये आज तक जो लोग अहिंसा की बात करते रहे हैं, उनके लिए अहिंसा भी एक सीढ़ी है।

नहीं, अहिंसा जो सीढ़ी बनती है, वह अहिंसा नहीं है। अहिंसा शब्द ठीक नहीं है, शब्द तो ठीक हैः प्रेम, ज्वलंत प्रेम। और प्रेम का मतलब हैः दूसरे कोसुख देने की कामना। लेकिन क्यों? इसलिए नहीं कि मोक्ष जाना है, इसलिए भी नहीं कि पुण्य होगा, बल्कि सिर्फ इसलिए कि जो आदमी जितना दूसरे को सुख दे पाता है उतना ही तत्क्षण स्वयं सुखी हो जाता है। तत्क्षण, आगे-पीछे नहीं, कभी भविष्य में नहीं। जो आदमी जितना दूसरे को सुख देता है, तत्क्षण उतना ही सुखी हो जाता है। जीवन में हम जो दूसरों के लिए करते हैं, वही हम पर वापस लौट आता है। जिंदगी में एक बड़ी प्रतिध्वनि है, एक ईको-पॉइंट है।

मैं एक पहाड़ पर गया था, कुछ मित्र मेरे साथ गए थे। एक मित्र साथ थे, उस पहाड़ पर एक ईकोपॉइंट था, जहां आवाज की जाए तो सात बार आवाज वापस लौटती थी घाटियों के बीच। तो साथ में जो मित्र थे, वे कुत्ते की आवाज करने लगे। सारे पहाड़ कुत्तों की आवाज से गूंज गए। मैंने उनसे कहाः रुको भी, अगर आवाज ही करनी है, तो कोयल की करो, या कोई गीत गाओ, कुत्ते की आवाज करने से क्या फायदा है? वे मित्र गीत गाने लगे प्रेम का, उन्होंने कोयल की आवाज की, वे पहाड़ियां कोयल की आवाज से गूंज उठीं। फिर हम लौटते थे, वे मित्र कुछ सोचने लगे, उदास हो गए और रास्ते में कहने लगे कि कहीं ऐसा तो नहीं कि आपने इशारा किया हो कि यह जो घाटी है, यह जो ईको-पॉइंट है, जिंदगी का... जिंदगी में भी जो कुत्ते की आवाज करता है, चारों तरफ उसके कुत्ते भौंकने लगते हैं। जिंदगी में भी जो गीत गाता है, चारों तरफ गीत की शहनाइयां बजने लगती हैं। जिंदगी में भी हम जो फेंकते हैं जिंदगी की तरफ, वही हम पर वापस लौटना शुरू हो जाता है, हजार-हजार गुना होकर। हजार-हजार गुना होकर हम पर वापस लौटने लगता है। प्रेम जो जितना बांटता है, उतना संगृहीत होकर उसके ऊपर बरसने लगता है।

एक छोटी सी कहानी और अपनी बात मैं पूरी कर दूंगा।

रवींद्रनाथ ने एक गीत लिखा है, बहुत प्यारा गीत। और उस गीत में लिखा है कि एक भिखमंगा सुबह ही सुबह उठा भीख मांगने के लिए। अपनी झोली निकाल कर कंधे पर डाल ली, आज त्यौहार का दिन है और बहुत

भीख मिलने की आशा है। ऐसा मालूम होता है कि त्यौहारों की ईजाद भिखमंगों ने ही की होगी। इनकी खोज इन्हीं ने की होगी। अपने झोले को डाल कर, उसने अपनी पत्नी से कुछ अनाज, कुछ चावल के दाने भी अपने झोले में डाल लिए। जब भी कोई भिखमंगा अपने घर से निकलता है, होशियार भिखमंगा, क्योंकि भिखमंगों में भी नासमझ भिखमंगे होते हैं। समझदार भी होते हैं। सब तरह की दुकानों में समझदार, नासमझदार, सभी तरह के लोग होते हैं। भिखमंगी भी एक दुकान है। उसने कुछ दाने अपने घर से डाल लिए। समझदार भिखमंगे कुछ दाने डाल कर निकलते हैं ताकि जिसके सामने झोली फैलाएं उसे दिखाई पड़े कि भीख पहले भी दी जा चुकी है। इनकार करने में जरा मुश्किल होती है अगर भीख पहले दी जा चुकी हो। क्योंकि अहंकार को चोट लगती है कि किसी दूसरे आदमी ने दान कर दिया है, और अगर हम नहीं करते तो इस आदमी के सामने छोटे हो जाते हैं। इसलिए भिखमंगे पैसे हाथ में बजाते हुए निकलते हैं। वे घर से लेकर निकलते हैं। कोई देता-वेता नहीं है।

डाल कर भिखमंगा अपनी झोली में... रास्ते पर आकर, राजपथ पर खड़ा ही हुआ था, सोचता था किस दिशा में जाऊं? कि दिखा कि सामने से ही सूरज निकलता है और राजा का स्वर्ण-रथ आ रहा है। राजा अपने रथ पर सवार है, सूर्य की किरणों में उसका रथ चमक रहा है। भिखमंगे के भाग्य खुल गए, उसने कभी राजा से भीख नहीं मांगी थी। राजाओं से भीख मांगना मुश्किल है। क्योंकि द्वार पर पहरेदार होते हैं, वे कभी भीतर प्रवेश नहीं करने देते। आज तो राजा रास्ते पर मिल गया है, आज तो झोली फैला दूंगा उसके सामने, शायद जन्म-जन्म के लिए मिल जाए, सब कुछ मिल जाए, फिर आगे भीख न मांगनी पड़े। इन्हीं कल्पनाओं में सपने बनाता हुआ और भिखमंगों के पास सिवाय सपनों के और कुछ भी नहीं होता, सपनों में ही जीना पड़ता है, क्योंकि जिनके पास कुछ नहीं है, वे सपने में ही जीने का रास्ता खोज लेते हैं। उसने महल बना लिए-सपनों में राजा की भिक्षा से, वह महलों में निवास करने लगा सपने में और तभी रथ आकर खड़ा हो गया। सारे सपने टूट गए और हैरान हो गया भिखारी, राजा नीचे उतरा और राजा ने अपनी झोली भिखारी के सामने फैला दी।

भिखारी ने कहाः क्या करते हैं आप? राजा ने कहाः क्षमा करना, अशोभन है, लेकिन ज्योतिषियों ने कहा है कि राज्य पर खतरा है दुश्मन का। और कहा है कि अगर मैं आज त्यौहार के दिन भीख मांगूं, जो पहला आदमी मुझे मिल जाए, तो राज्य खतरे से बच सकता है। तुम्हीं पहले आदमी हो। दुखी हूं, क्योंकि तुम भिखारी हो, तुमने कभी भिक्षा दी न होगी, इसलिए बड़ी मुश्किल पड़ेगी देने में। लेकिन कुछ भी थोड़ा सा दे दो। इनकार मत कर देना, पूरे राज्य के भाग्य का सवाल है।

भिखमंगा किस मुसीबत में पड़ गया होगा? उसने हमेशा मांगा था, दिया कभी भी न था। देने की कोई आदत न थी। झोली में हाथ डालता है, खोल-खोल बाहर निकाल लेता है। इनकार भी कर नहीं सकता। सामने राजा खड़ा है, पूरे राज्य के संकट का सवाल है। और खुद पर भारी संकट है। राज्य से भी बड़ा संकट। हाथ भीतर डालता है, मुट्ठी बंधती नहीं। राजा कहता है, इनकार मत कर देना। क्योंकि ज्योतिषियों ने कहा है कि अगर पहले आदमी ने इनकार कर दिया तो संकट निश्चित है! तू एक दाना ही दे दे, लेकिन कुछ भी दे दे। भिखारी ने बामुश्किल एक चावल का दाना निकाल कर राजा की झोली में डाल दिया। राजा अपने रथ पर बैठा चला गया। धूल उड़ती रह गई, भिखारी के सब सपने धूल हो गए। उलटा मिला तो कुछ भी नहीं, पास से कुछ चला गया। उसका दुख आप जानते हैं?

दिन भर भीख मांगी, बहुत मिला उस दिन; बहुत मिला इतना कभी भी न मिला था। लेकिन मन प्रसन्न न हुआ। क्योंकि जो मिलता है उससे प्रसन्न नहीं होता मन, जो छूट जाता है उससे दुखी होता है। वह एक दाना खटकता रहा जो दिया था। सबके मन की यही हालत है; क्योंकि सब छोटे-मोटे भिखारी हैं। जो छूट जाता है वह

खटकता रहता है, जो मिल जाता है उसका पता ही नहीं चलता। भिखारी के मन का लक्षण यह है। जो मिल जाए उसका पता न चले, जो न मिले, जो छूट जाए, उसकी पीड़ा कसकती रहती है।

घर पहुंचा है उदास, झोला पटक दिया, पत्नी तो पागल हो गई, इतना कभी न मिला था। झोला खोलने लगी, लेकिन पति को उदास देख कर कहा उदास हैं आप? पति ने कहाः तुझे पता नहीं पागल, झोली में थोड़ा कम है आज। थोड़ा देना भी पड़ा है। ऐसा जिंदगी में कभी न किया था, आज वह करना पड़ा है। पत्नी ने झोला खोला, दाने बिखर गए और पति छाती पीट कर रोने लगा, अब तक उदास था, अब छाती पीट कर रोने लगा, आंसुओं की धार बहने लगी। पत्नी ने पूछाः क्या हुआ? पति ने नीचे के दाने उठाए, एक दाना सोने का हो गया था। एक चावल का दाना सोने का हो गया है! चिल्लाने लगा कि भूल हो गई, अवसर निकल गया, मैंने अगर सारे दाने दे दिए होते तो सब सोने के हो जाते। लेकिन अब कहां खोजूं उस राजा को? कहां मिलेगा वह रथ? और कहां सम्राट को राजी कर पाऊंगा कि वह भिक्षा मांगे? अवसर चूक गया है।

मुझे पता नहीं यह कहानी कहां तक सच है? लेकिन यह मुझे पता है कि जिंदगी के अंत में आदमी ने जो दिया है वही सोने का होकर वापस लौट आता है। जो दिया है वही स्वर्ण का हो जाता है, जो रोक लिया है वही मिट्टी हो जाता है। प्रेम का अर्थ हैः दान। प्रेम का अर्थ हैः बांटना। जितना बंट जाता है व्यक्तित्व, आत्मा उतनी ही स्वर्णिम हो जाती है। जितनी रुक जाती है, उतनी ही मिट्टी हो जाती है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं।

मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

पांचवां प्रवचन

सत्य है अनुभूति

मेरे प्रिय आत्मन्!

प्रश्नः मैं कोई इंटरव्यू लेने के लिए नहीं आया हूं, परंतु मैं कुछ समझने के लिए आया हूं। शायद आपके पीछे मैं जो कुछ लिखने को सोच रहा हूं, उसमें कोई गलती न हो जाए। तो मैं पहला यह आपको पूछना मांगता हूं कि सत्य क्या चीज है?

सत्य कोई चीज नहीं है, सत्य है अनुभूति। और अनुभूति भी किसी चीज की नहीं, स्वयं की। स्वयं से हम अपरिचित हैं, इसे मैं कहता हूं, असत्य। और स्वयं को हम जान लें, तो उसे मैं कहूंगा, सत्य। और स्वयं के अतिरिक्त मेरे लिए कुछ भी सत्य कैसे हो सकता है? यद्यपि जिस दिन कोई व्यक्ति स्वयं को उसकी परिपूर्णता में जान लेता है, उस दिन उसे स्वयं में और शेष में कोई अंतर भी नहीं रह जाता। तो असत्य कहता हूं मैं स्वयं को न जानने की अवस्था को और सत्य कहता हूं स्वयं को जान लेने की अवस्था को। लेकिन आमतौर से ऐसा समझा जाता है कि सत्य कोई चीज है, जिसे मैं जान लूंगा। सत्य कोई ऑब्जेक्ट है। सत्य कोई चीज नहीं, कोई ऑब्जेक्ट नहीं। सत्य कहीं भी है नहीं कि मैं जाऊंगा और उसे पा लूंगा। मैं ही हूं सत्य। लेकिन यह जान लेना कि यह मुझे अज्ञात है, यह असत्य की स्थिति है।

प्रश्नः एक प्रश्न है कि जैसे एक छुरी है, एक चाकू है, लड़के खेलते हैं, और हम उनसे कहते हैं कि भाई लग जाएगा, मगर जब वह लगता है, वह उससे तो हम भी समझ लेते हैं कि छुरी और चाकू के साथ लड़ने से लगता है, तो वह तो सत्य हो सका न? मैंने यह सीख लिया कि छुरी के साथ खेलने से लगता है।

यह सत्य नहीं हुआ, यह सिर्फ तथ्य हुआ। यह फैक्ट हुआ ट्रुथ नहीं। यह सिर्फ तथ्य हुआ कि छुरी के लगने से चोट आ जाती है। यह एक तथ्य हुआ। छुरी और हाथ के टकराने से दर्द शुरू होता है, यह एक तथ्य हुआ। किसी हालत में छुरी और हाथ के टकराने से दर्द मिट भी सकता है। एक फोड़ा है... और छुरी लगाने से दर्द मिट भी सकता है, वह एक दूसरा तथ्य हुआ। सत्य का अर्थ... आप एक मिनट... सही ख्याल में आ जाए...

पिछले महायुद्ध में फ्रांस में एक कैदी को पैर में चोट लगी, इतना दर्द था कि उसे बेहोश करके रखा, और रात पैर का आपरेशन हुआ, पूरा पैर अलग कर दिया गया। सुबह जब उसकी आंख खुली, होश आया, तो वह फिर कहने लगा कि मेरे अंगूठे में बहुत दर्द हो रहा है। अंगूठा था ही नहीं। डाक्टर बहुत परेशान हो गए। जो अंगूठा नहीं है, उसमें दर्द कैसे हो सकता है? यह तो असंभव है। अंगूठा तो होना चाहिए दर्द के लिए। बहुत जांच-पड़ताल की, तो पता चला कि वह जो नस अगूंठे में दर्द होते वक्त फड़कती थी और उसके मस्तिष्क में दर्द मालूम पड़ता था, वह अब भी फड़क रही है। अंगूठा तो नहीं है, लेकिन नस फड़क रही है और दर्द जारी है। अब यह दर्द सत्य नहीं है, सिर्फ तथ्य है।

तथ्य का मतलब यही है कि जो बदल सकता है, जो अन्यथा हो सकता है, जिसके विपरीत भी हो सकता है। वह कामचलाऊ दुनिया में सत्य कहा जाता है।

लेकिन सत्य का, जिस सत्य के लिए मैं बात कर रहा हूं, या जिस सत्य के लिए बुद्ध बात करते हैं, या शंकर बात करते हैं, वह सत्य यह सत्‌य नहीं है। वे उस सत्य की बात करते हैं कि जो अंततः मैं हूं। जो कभी नहीं बदल सकता। जो सदा वही रहेगा जो था, जो सदा वही है जो है, जो कभी भी नहीं बदलता है, बदलना जिसका असंभव है, वह सत्य है। और जो बदलता रहता है... जैसे मैं कल बच्चा था, वह एक तथ्य था, आज जवान हो गया हूं, वह तथ्य बदल गया है। आज जवान हूं, यह तथ्य है, कल बूढ़ा हो जाऊंगा, यह भी बदल गया। जो बदल जाता है, वह तथ्य है। जब तक नहीं बदलता, वह सत्य जैसा भ्रम देता है।

इसलिए कुछ लोग तथ्य को ही सत्य मान लेते हैं। लेकिन तथ्य की दुनिया सत्य नहीं है। तथ्य की दुनिया तो परिवर्तन, प्रवाह है। सत्य की दुनिया है वह जहां कोई परिवर्तन नहीं है। इसलिए उसको मैं सत्य कह रहा हूं।

प्रश्नः योग के बारे में आपका यह ख्याल है कि न कोई पति है, न कोई पत्नी है; सबके साथ मैत्री का संबंध रखने का और मैत्री के रूप में एक साथ रहने का। मेरे ख्याल से ऐसा करने से यह समाज की जो शुद्धता है, वह खंडित हो जाएगी। और जो अनाचार है, उससे बढ़ जाएगा, क्योंकि हर एक नये... मित्र, मित्र से तो बदला जाता है, आज उनका मैं मित्र हूं, कल वह नहीं होगा।

यह जो आप कहते हैं, इसमें दो-तीन बातें समझ लें। पहली तो बात यह, मैंने यह नहीं कहा है कि न कोई पत्नी है, न कोई मां है, न कोई बहन है। मैंने यह नहीं कहा है। मैंने इतना ही कहा है कि स्त्री की हैसियत अभी स्वयं में कुछ भी नहीं है। वह या तो पत्नी होकर होती है, या मां होकर होती है, या बहन होकर होती है। इसके अतिरिक्त उसका कोई अपना होना नहीं है। वह संबंधित हो तो ही वह कुछ होती है। दूसरी बात मैंने यह कही है, वह यह है कि स्त्री और पुरुष के बीच हमारे सब संबंध सेक्सुअल हैं। अगर किसी स्त्री को मैं अपनी मां कहता हूं, तो उसका मतलब कुल इतना है कि मेरे पिता और उसके बीच सेक्स का संबंध है। किसी स्त्री को मैं अपनी बहन कहता हूं, तो उसका मतलब यह है कि दो व्यक्तियों के सेक्स के संबंध से हम दोनों पैदा हुए हैं। किसी को मैं अपनी बेटी कहता हूं, तो उससे मेरा मतलब है, किसी स्त्री से मेरा सेक्स का संबंध है, जिससे यह पैदा हुई है। अभी हमारी जो स्त्री और पुरुष के बीच के संबंध की धारणा है, वह टोटली सेक्सुअल है। वह एकदम कामुक है। लेकिन जो मैं कह रहा हूं कि स्त्री और पुरुष के बीच ऐसी दुनिया भी विकसित होनी चाहिए जहां स्त्री और पुरुष के बीच बिना सेक्स के भी संबंध हो सकें, उसको मैं मैत्री कह रहा हूं। तो मैं दुनिया को सेक्सुअल बनाने में, भ्रष्टाचार में ले जाने को नहीं कह रहा हूं। भ्रष्टाचार में दुनिया है। और जिसको आप कहते हैं कि यह मेरी मां है, और बड़ा आदर बताते हैं, वह आदर-वादर नहीं है, सेक्सुअल संबंध है।

प्रश्नः ठीक कहा।

आप...

प्रश्नः मेरे लिए तो मेरी मां ही है?

नहीं, आपके लिए आपकी मां सिर्फ इसलिए है कि आपके बाप से उसका सेक्सुअल संबंध है। नहीं तो मां नहीं है आपके लिए। अगर कल पता चल जाए कि दूसरे आदमी से उसका संबंध है, तो मामला गड़बड़ हो जाएगा। यह जो मैं आपसे कह रहा हूं कि हमारी जो अब तक स्त्री-पुरुष के संबंध की धारणा है, वह संबंध की धारणा बेसिकली सेक्स पर खड़ी हुई है। और मेरी मान्यता है कि यह अच्छी संस्कृति का लक्षण नहीं है जहां कि स्त्री-पुरुष के बीच सारे संबंध सेक्सुअल हों। कोई तो संबंध ऐसा भी होना चाहिए जो सेक्सुअल नहीं है। उस संबंध को मैं फ्रेंडशिप कह रहा हूं। तुम त्याग कह रहे हो, वह मैंने कभी नहीं कहा है।

मेरा कहने का जो मतलब है वह यह हैः एक अच्छी दुनिया होगी तो उसमें स्त्री-पुरुष मित्र भी हो सकते हैं, जरूरी नहीं है कि वे सेक्स से ही संबंधित हों तभी संबंधित हों। यह जरूरत अनैतिक समाज की जरूरत है। यह जरूरत बहुत ही सेक्सुअली परवर्टेड समाज की जरूरत है, एक बात। दूसरी बात जो आप कहते हैं कि स्त्री-पुरुष के बीच मैत्री होगी तो बड़ा भ्रष्टाचार बढ़ जाएगा। तो आप यह भूल जाते हैं कि भ्रष्टाचार कितना है? और जिस समाज को आपने आज तक पैदा किया है, आपकी नीति और नियम के अनुसार उस समाज में कितना भ्रष्टाचार है? और मेरी मान्यता है कि वह भ्रष्टाचार कम हो जाएगा अगर स्त्री-पुरुष के बीच मैत्री और निकटता के संबंध बढ़ जाएं।

क्यों? अभी क्या हालत है? अभी हालत यह है कि आप स्त्री और पुरुष से जब भी संबंधित हों, तब सिवाय सेक्स के कुछ और सूझता ही नहीं। क्योंकि वही एक संबंध रहा है आज तक। दूसरी बात यह है कि आप एक आदमी है, वह अपनी पत्नी को जानता है, अपनी मां को जानता है, अपनी बहन को जानता है, इसके बाहर की स्त्रियों से उसकी कोई जानकारी नहीं है। इसलिए वह स्त्रियों के प्रति बहुत आकर्षित होता है। जिनको जानता है उनके प्रति कभी आकर्षित नहीं होता। पति पत्नी के प्रति सबसे कम आकर्षित रह जाता है, पड़ोस की पत्नी के प्रति बहुत आकर्षित मालूम होता है, क्योंकि उसको नहीं जानता। न जानने में आकर्षण और रस है, जानने में सब आकर्षण खत्म हो जाता है।

मेरा मानना है कि अभी जो आपका समाज है उसे स्त्री और पुरुष के बीच जितना रस मालूम होता है, यह रस बीच में दीवाल की वजह से पैदा हुआ है। अगर दुनिया में स्त्री और पुरुष इतने परिचित हों बचपन से--साथ खेलें हों, साथ कूदे हों, साथ नहाए हों, साथ तैरे हों, साथ बड़े हुए हों, तो एक-दूसरे को इतना जान लेंगे कि यह जो गर्भित रस पैदा होता है यह कभी पैदा नहीं होगा। और गर्भित रस ही भ्रष्टाचार का कारण है। और आपका समाज पूरा भ्रष्टाचारी समाज है। और इस समाज को बदलने के लिए इसकी पूरी की पूरी नैतिक नींव एकदम रूपांतरित की जानी जरूरी है। उसमें पहला नैतिक नियम जो रूपांतरित होना चाहिए वह यह कि व्यक्ति और, स्त्री और पुरुष के बीच जितना सामंजस्य हो सके, जितनी मैत्री हो सके, जितनी कम दीवालें हो सकें, वे जितने एक-दूसरे से परिचित हो सकें, उतना स्वस्थ और नैतिक समाज पैदा करने में सहयोगी होगा। मेरा मानना है कि जो मैं कह रहा हूं उससे ही भ्रष्टाचार खत्म होगा।

और आप जो मानते हैं उससे भ्रष्टाचार है। और तीसरी बात, यह जो, यह जो सवाल आपने उठाया है, तीसरी बात यह कि स्त्री-पुरुष के बीच जब तक प्रेम है, तब तक संबंध तो नीतिपूर्ण है, और जिस दिन प्रेम नहीं है, उस दिन संबंध बिल्कुल अनीतिपूर्ण है। लेकिन आपकी जो व्यवस्था है विवाह की, वह उस अनीतिपूर्ण संबंध को जारी रखवाती है। वह जारी रखवाती है। और उस अनीतिपूर्ण संबंध के कारण उन दोनों का मन एक-दूसरे के पास भी नहीं है, लेकिन अब वे बंधे हैं कानूनन। और दोनों के मन भाग रहे हैं। पूरा समाज कानूनन बंधा है और सबके मन इधर-उधर भाग रहे हैं। इससे पूरा का पूरा परिवेश भ्रष्टाचार का परिवेश निर्मित होता है।

मेरी अपनी समझ यह है कि प्रेम के अतिरिक्त स्त्री और पुरुष के बीच साथ रहने का कोई अर्थ नहीं है। यानी कोई लीगल अर्थ नहीं होता। और एक ऐसी दुनिया बनानी चाहिए जिसमें प्रेम के विकास की संभावना हो। और जो लोग प्रेम करते हैं, वे ही साथ रहने को तैयार हों। और जब तक प्रेम करते हैं। उसके एक क्षण बाद साथ रहने की जरूरत नहीं है। क्योंकि वह पापपूर्ण है उसके बाद साथ रहना। लेकिन हमको घबड़ाहट लगी हुई है कि आप कहते हैं कि हमारा सारा समाज टूट जाएगा? मैं कहता हूं, ...

प्रश्नः समाज तो टूटता ही है।

हां, यानी समाज की व्यवस्था, और सारी, वह सारी टूट जाएगी। मैं कहता हूं, वह टूट जानी चाहिए। क्योंकि वह टूटने योग्य है। वह बचाने योग्य नहीं है। और इतने दिन हमने बचाई है सिर्फ इसी भय से बचाई है कि कहीं टूट न जाए। लेकिन उन्हें यह ख्याल ही नहीं है कि उसको बचा कर उन्हें क्या मिल गया है? न तो जीवन सुखी है, न परिवार सुखी है, न मां-बाप सुखी हैं, न बेटे-बच्चे सुखी हैं; कोई सुखी नहीं है, निपट कलह और दुख और तकलीफ। और इस दुख और तकलीफ का धार्मिक लोग बड़ा फायदा उठा रहे हैं। और धार्मिक लोग चाहते हैं कि दुख-तकलीफ जारी रहे। क्योंकि अगर दुनिया सुखी होगी तो धर्म खत्म हो जाएगा। दुखी आदमी धर्म की तलाश करते हैं। जितना समाज में दुख होता है उतना वे चरण छूते हैं किसी स्वामी का, संन्यासी का कि कोई मार्ग बताइए शांति का, मोक्ष जाने का कोई रास्ता बताइए। क्योंकि जीवन तो नरक है। दुनिया में धार्मिक शड्यंत्र यह नहीं चाहता कि आदमी सुखी हो जाए।

बर्ट्रेंड रसल ने एक बहुत अजीब बात कही है, उसने कहा है कि दुनिया में जब तक दुख है तभी तक धर्म रह सकता है। जिस दिन समाज की व्यवस्था अत्यंत सुखपूर्ण होगी, उस दिन यह धर्म नहीं रह सकता, कोई दूसरा धर्म हो सकता है।

बर्ट्रेंड रसल से मैं सहमत नहीं हूं। यहीं तक सहमत हूं, मेरा कहना, बिल्कुल और तरह का धर्म होगा। वह दुखी आदमी का धर्म नहीं होगा, वह सुखी आदमी का धर्म होगा। वह और तरह का धर्म होगा।

यह समाज तो टूटना ही चाहिए, यह सड़ा-गला समाज जाना ही चाहिए। इसको भेजने में जितना उपाय किया जा सके वह मेरी तरफ से मैं करता हूं, करना चाहिए। तो वह तो सवाल नहीं है कि यह समाज टूट जाए। वह टूट जाना चाहिए।

प्रश्नः तो आपने तो जो प्रेम के बारे में जो बंबई में ऐसा कहा था कि प्रेम का संबंध भी काम के साथ संबंधित है।

हां, हां, यही कहा?

प्रश्नः तो फिर काम और प्रेम एक ही है?

नहीं, यह मैंने नहीं कहा। यही तो गलती कर लेते हैं न। अगर मैं कहूं कि बीज के साथ वृक्ष संबंधित है, तो आप यह मतलब नहीं लेते की बीज ही वृक्ष है। और आप बीज में बीज के नीचे बैठ कर छाया नहीं लेने लगते।

और न बीज से लकड़ियां काट कर घर ले आते हैं। और, और बीज का आप क्या करते हैं? जब मैं कहता हूं, बीज से वृक्ष है, तो मेरा मतलब यह है कि बीज पहली संभावना है जहां से वृक्ष विकसित हो सकता है। हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता। अगर बीज को तिजोरी में रख दें, तो नहीं भी होगा, बीज बीज ही रह जाएगा। हां, जमीन में बोओ, पानी डालो, बागुड़ लगाओ, तो वृक्ष हो जाएगा। और जिस दिन वृक्ष होगा उस दिन हमारी कल्पना में भी नहीं आएगा कि यही वृक्ष बीज था? और एक दिन अगर कोई कहेगा कि यह जो बीज दिखाई पड़ रहा है यही वटवृक्ष है, तो हम कहेंगे, तू पागल है, यह बीज कैसे हो सकता है?

मनुष्य के भीतर जो काम की वृत्ति है वह प्रेम का बीजांकुर है। वही बीज है। लेकिन काम प्रेम है यह मैं नहीं कह रहा। यह तो इतनी जल्दी चली जाती है। मैं यह कह रहा हूं कि काम की जो स्फुरणा है, सेक्स की जो स्फुरणा में वह प्रेम का बीज है। लेकिन वह सेक्स भी रह सकता है, प्रेम कभी न बने, यह भी हो सकता है। अगर उसको ठीक भूमि न मिली, तो वह सेक्स ही रह जाएगा। और अगर ठीक भूमि मिली, तो वह प्रेम में रूपांतरित हो सकता है, परिवर्तित हो सकता है।

वह जो आप कहते हैं, जो हम कहते हैं, हमसारा प्रेम खोज कर देख लें◌ः मां अपने बेटे को प्रेम करती है किस वजह से? समझती है बड़ा पवित्र प्रेम है। सारा का सारा सेक्सुअल मामला है। मां अपने बेटे को प्रेम करती है किस वजह से? दूसरे के बेटे को क्यों नहीं करती? मेरी बात आप समझ रहे हैं न? यह बेटा इससे ही आता है। यह इसकी ही सेक्स की प्रॉडक्ट है। यह इसकी ही कामवासना का विकास है। यह इसकी कामवासना से ही आया है, तो प्रेम पैदा होगा, नहीं तो नहीं प्रेम होगा।

आप चिल्लाते फिरते हैं कि मां का प्रेम बड़ा पवित्र है। एकदम सेक्सुअल है। और मां के प्रेम से ज्यादा सेक्सुअल कोई प्रेम नहीं है। मगर हमारी तकलीफ यह है कि हम वह पूरी बात को समझना ही नहीं चाहते कि आखिर इस मां की कामवासना से जो पैदा हुआ है, इसलिए इसमें रस है। क्योंकि वह इसकी कामवासना से आया है। बाप को अपने बेटे में रस है, क्योंकि उसकी कामवासना से आया है। बाप को अगर पता चल जाए कि यह किसी दूसरे पुरुष से पैदा हुआ है, और उसका ही बेटा रहा हो सच में, तो दुश्मनी खड़ी हो जाएगी, प्रेम-व्रेम सब विलीन हो जाएगा। वह चित्त की कामुकता का ही विस्तार है। वह उसका ही विस्तार है।

एक चिड़िया है, वह अपने छोटे से बच्चे को दाना खिला रही है। हम कहते हैं, कितना बड़ा प्रेम जाहिर हो रहा है। वह चिड़िया उस बच्चे को इसलिए खाना खिला रही है कि वह उसकी सेक्स डिजायर का ही रूपांतरण है। वह उसकी ही डिजायर का हिस्सा है। वह उसके ही शरीर का पार्ट है। वह उसके ही जिन, सेक्स अंगों से वह बनी है, उसी सेक्स अंगों से वह बना है, इसलिए आपस में वह कशिश। सारा प्रेम, चाहे मां का... आप हैरान होंगे, अगर मां की सारी सेक्स गं्रथियां निकाल ली जाएं, पुरुष की सारी सेक्स ग्रंथियां निकाल ली जाएं, एक बच्चा पैदा हो और उसकी सारी सेक्स ग्रंथियां निकाल ली जाएं, उस बच्चे में प्रेम कभी पैदा नहीं होगा। उसमें प्रेम पैदा ही नहीं होगा। यह आपको पता नहीं है कि हम क्रोध भी करते हैं तो उसकी भी ग्रंथियां हैं।

पावलफ ने प्रयोग किए, कि एक कुत्ते, जो कि बहुत तेज कुत्ता था, उसकी ग्रंथियां निकाल लीं क्रोध की। फिर उसको आप कितना ही परेशान करो, वह सब कुछ करेगा, क्रोध वह नहीं कर सकता। वह हाथ-पैर हिलाएगा, इधर-उधर जाएगा, घूमेगा, लेकिन भौंक नहीं सकता, क्रोध भी नहीं कर सकता। क्योंकि वह जो क्रोध में रहने की सिस्टम थी, उसकी जो ग्रंथि थी, वह खत्म हो गई है, वह टूट गई है। सेक्स की जो ग्रंथि है, वह ग्रंथि काम कर रही है आपके प्रेम की ऊर्जा में। लेकिन मैं यह नहीं कहता कि सेक्स ही प्रेम है। मैं यह कहता हूं, सेक्स प्रथम किरण है। अगर यह विकसित हो जाए पूरी, पूरी फ्लॉवरिंग हो जाए इसकी, तो प्रेम पूर्ण रूप से

उपलब्ध होता है। और जब प्रेम उपलब्ध होता है, तो पता भी नहीं चलता कि यह कभी सेक्स था। जैसे कि वृक्ष को देख कर कभी पता नहीं चलता कि इतना सा बीज था। जब प्रेम पूरा खिलता है तो पता ही नहीं चलता कि इसका सेक्स से कोई संबंध है। मां को कभी पता चलता है कि बेटे से मेरा सेक्स का कोई संबंध है?

जब एक पुरुष किसी स्त्री को पूरी तरह प्रेम करता है, तो उसे ख्याल में भी नहीं आता कि इससे मेरा जो संबंध है वह सेक्सुअल है। जब पूरे प्रेम में होता है तो पता भी नहीं चलता। और यहां तक संभावना है, यहां तक संभावना है कि अगर प्रेम पूरा विकसित हो जाए, तो बिल्कुल ही अनसेक्सुअल हो जाता है, यानी अब वह सेक्स-वेक्स रह ही नहीं जाता बिल्कुल। लेकिन उसकी पहली यात्रा सेक्स से शुरू होती है। और वही मैंने कहा है कि काम ही अंततः विकसित होकर प्रेम बनता है। इसलिए जो काम से लड़ते हैं, उनकी जिदंगी में प्रेम कभी पैदा नहीं होता। इसलिए मेरा मानना है जिनको आप ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारी कहते हैं, उनके जीवन में कभी प्रेम पैदा नहीं होता। अगर ये काम से लड़ते हैं तो। और अगर काम को रूपांतरित करते हैं, तो उनकी जिंदगी में इतना प्रेम पैदा होता है जितना गृहस्थ के जीवन में कभी नहीं दिखाई पड़ेगा। क्यों? क्योंकि गृहस्थ की सेक्स ऊर्जा खत्म हो जाती है। जितनी बचती है उतना ही प्रेम प्रकट हो सकता है। और जिस आदमी की सेक्स ऊर्जा खत्म नहीं होती, रूपांतरित होती है, उसमें इतना प्रेम, इतना प्रकट होता है, हमारी कल्पना के बाहर है।

मेरा, मेरा मतलब यह है कि वह भी सेक्स ऊर्जा का ही विस्तार है। इसलिए कृष्ण जैसे लोग या बुद्ध जैसे लोग इतने प्रेम से भरे हुए हैं। यह कुछ भी नहीं है, यह वही ऊर्जा बिना खर्च हुए पूरी की पूरी प्रेम बन गई है। तो इसलिए बुद्ध के पास जितना बड़ा वृक्ष है प्रेम का, हमारे पास नहीं है। एक बाप का वृक्ष इतना बड़ा होता है कि उसके बेटे उसके नीचे मुश्किल से खड़े हो पाएं। और वह भी कभी-कभी इतना छोटा होता है कि अगर पांच बेटे हैं तो एक ही खड़ा हो पाता है, चार वृक्ष के बाहर पड़ जाते हैं। उतनी ऊर्जा है, उतना रूपांतरण है। लेकिन बुद्ध जैसे व्यक्ति के लिए फिर लाखों लोग खड़े हो जाते हैं, वह वृक्ष फैलता ही जाता है, अंतहीन, क्योंकि वह खर्च ही नहीं हुई है ऊर्जा, वह सारी की सारी ऊर्जा उठ कर वृक्ष बन गई है।

तो मेरा जो कहना है वह यह है कि सेक्स को समझिए। और सेक्स को रूपांतरण करने की प्रक्रिया समझिए। सेक्स से बिगड़ाइए मत, डरिए भी मत, भागिए भी मत। क्योंकि वही जीवन का स्रोत है। और उस जीवन के स्रोत को बदलना है।

प्रश्नः सेक्स से भाग कर तो कोई है ही नहीं। क्योंकि जो लोग संसार में रहते हैं, उनका यह धर्म है कि संसार को चलाएं?

यह किसने बता दिया?

प्रश्नः शादी के बाद जो संसारी का धर्म है... ?

धर्म-वर्म नहीं है। धर्म-वर्म नहीं है। यह फरेब है। आप बच नहीं सकते बिना बच्चे पैदा करने से। धर्म-वर्म नहीं है। फर्ज भी नहीं है। सब धोखे के शब्द हैं।

प्रश्नः बच्चे तो बच सकते हैं...

जरा भी नहीं बच सकते।

प्रश्नः जो संतान को बुलाने के धर्म... ब्रह्मचारी हैं आप...

मैं आपको, मैं आपको बताऊं, न तो धर्म है और न फर्ज है आपका, आपकी मजबूरी है। और मजबूरी को अच्छे-अच्छे शब्द पहनाते हो आप। और यह भी मत सोचना कि आप संसार चलाने के लिए बच्चे पैदा करते हैं, बच्चे पैदा होते हैं, बाई-प्रॉडक्ट, आप कुछ और ही करने को गए थे, बच्चे-वच्चे पैदा करने आप नहीं गए थे।

प्रश्नः तो स्वामी जी, तो बाई-प्रॉडक्ट, तो किसी को...

मेरा मतलब यह नहीं है, मेरा मतलब यह नहीं है, मेरा मतलब यह है कि दुनिया में सौ आदमी बच्चे पैदा करते हैं, शायद एक आदमी कांशसली बच्चे के लिए संभोग करता हो। निन्यानबे आदमी संभोग करते हैं और बच्चे पैदा हो जाते हैं।

प्रश्नः हां, वह बात है।

आपका, धर्म-वर्म नहीं है वह आपका, ये सब तरकीबें जो शास्त्र उपयोग करते हैं, बड़ी बेईमानी की हैं। और आदमी को ऐसी बातें सिखाती हैं जो कि सच्ची नहीं हैं। अगर आपका बेटा भी आकर कहे, तो आपको गुस्सा आएगा इस बात से, अगर बेटे से आप कहें कि मैंने तुझे पैदा किया, और सच्ची बात यह है कि आपने कभी सोचा ही नहीं था उसको पैदा करने को। वह बिल्कुल ही हैपनिंग है। आप अपने सेक्स का सुख ले रहे थे, वह बेचारा बीच में आ गया। और आपको पता ही नहीं कि उसके आने में कितने बेटे और खो गए। एक आदमी एक जिंदगी में कम से कम चार हजार बार संभोग कर सकता है। और एक संभोग में जितने वीर्य-अणु जाते हैं--एक संभोग में कम से कम एक करोड़ बच्चे पैदा हो सकते हैं--एक संभोग में जितने वीर्य-अणु होते हैं। और चार हजार बार आदमी संभोग कर सकता है, एक साधारण आदमी। चार हजार करोड़ बच्चे आप पैदा कर सकते थे। और जो पैदा हो गए हैं वे ही नहीं थे, और भी बहुत संभावनाएं थीं पैदा होने की, जो खो गई हैं। और उनका आपको कोई पता नहीं। यह भी खो जाता तो आपको कोई पता नहीं था। न आपने कभी चाहा था, न कभी आपने सोचा था, यह आप कुछ और कर रहे थे, यह बच्चा उसमें आ गया है। आ जाने के बाद धर्म बतला रहे हैं, और कर्तव्य बतला रहे हैं, और सब झूठी बकवास जारी कर रहे हैं। लेकिन यही सब बकवास बच्चों को अब समझ में आनी शुरू हो जाएगी, बहुत ज्यादा दिन चलने वाली नहीं है।

मेरा कहना कुल इतना है कि चीजों के सत्य को समझना चाहिए। सत्य यह है कि आदमी में कामवासना की वृत्ति है। सत्य यह है कि स्त्री-पुरुष मिलना चाहते हैं। इस मिलने को निंदित करना है, पाप बताना है, घृणापूर्वक नीचा दिखाना है, वह अब तक हुआ है। या इसको ऊंचा उठाना है, पवित्र बनाना है, स्प्रिचुएलाइज करना है, श्रेष्ठ करना है, वह अब तक नहीं हुआ है। वह होना चाहिए, जो मेरा कुल कहना है।

प्रश्नः अब तक जो चला है तो वह ऐसा चला है कि जो मैं अपनी पत्नी के सिवाय और किसी स्त्री के साथ जो संभोग कर सकता हूं तो यह अनिष्ट माना जाता है, फिर स्त्री के साथ जो मैं करता हूं...

यह अनिष्ट माना जाता है।

प्रश्नः हां।

यह क्यों माना जाता है अनिष्ट, इस पर कभी आपने सोचा है? यह नहीं है अनिष्ट। यह तो हमारी मान्यता की बात हुई न। यह आप ख्याल करेंगे कि यह सेक्सुअल माइंड की वजह से अनिष्ट हो गया। यह कोई बहुत पवित्र बात नहीं है। आप किसी दूसरे की पत्नी से संभोग नहीं करने, नहीं करने का जो नियम बनाया है, वह इसीलिए कि आपकी पत्नी से कोई दूसरा संभोग न कर ले। सारा नियम इसलिए है कि वह जो पत्नी से बच्चा पैदा हो वह मेरे सेक्स का आथेंटिक होना चाहिए, कहीं गड़बड़ न हो जाए, किसी और के सेक्स से न आ जाए वह। आदमी अपनी कामवासना का बहुत निर्णायक रूप से यह विश्वास चाहता है प्रामाणिक कि वह मेरा ही है। उस प्रामाणिक चाहने के दो कारण हैं। और दोनों कारण बिल्कुल ही पाशविक हैं। कोई बड़े ऊंचे कारण नहीं हैं।

पहला कारण तो यह है कि वह जो बच्चा उससे नहीं आया है, वह उसको कभी भी प्रेम नहीं कर पाएगा। उसे पक्का भरोसा होना कि तभी उसके प्रेम की ऊर्जा खिलेगी, नहीं तो वह खिल नहीं सकती। संबंध बनाया तो मुश्किल हो जाएगा, प्रेम नहीं खिल पाएगा उसके प्रति। एक, एक तो यह कारण है। और दूसरा कारण यह कि उसकी जो संपत्ति है, वह उसकी ही पैदाइश को मिलनी चाहिए, वह कहीं किसी और को न मिल जाए। तो प्राइवेट प्रापर्टी और सेक्सुअलिटी, ये दो कारण हैं। जिसकी वजह से यह नियम बनाया कि अपनी ही पत्नी से ही संभोग करना, किसी और से बड़ा पाप है, बड़ा नरक का द्वार है।

मैं नहीं कहता कि दूसरे से करना, मैं नहीं कहूंगा, मैं तो यह कह रहा हूं कि जिससे आपका प्रेम नहीं है उससे संभोग करना पाप है, चाहे वह आपकी ही पत्नी क्यों न हो? मैं तो आपसे ऊंची बात कह रहा हूं, मैं तो यह कह रहा हूं कि जिससे प्रेम नहीं है उससे संभोग करना पाप है, चाहे वह आपकी ही पत्नी क्यों न हो? और जिससे प्रेम है, जिससे आपका प्रेम है, उससे संभोग करना पुण्य है। लेकिन संभोग करने का मतलब यह हुआ कि आप उसके ऊपर की सारी जिम्मेवारी लेने को आप राजी हैं। वह आपकी पत्नी बन जाती है। पत्नी बनने का मतलब क्या है? --कि आप सारी जिम्मेवारी लेने को राजी हैं।

प्रश्नः और जो दूसरे किसी से शादी करके बैठी है और उसके घर में बैठी है, उसके साथ मेरा प्रेम हो जाए, तो मैं उसके साथ कैसे कर सकता हूं?

यह घर गलत है, यह गलत घर है, जिसमें एक औरत किसी के घर में बैठी है और आपका प्रेम हो जाए, इसका मतलब यह हुआ कि जिस घर में बैठी है वहां प्रेम नहीं है, पहली बात। आपसे प्रेम होता है, दूसरी बात। समाज ऐसा होना चाहिए कि यह घर बदल जाए। यह पत्नी आपको मिल जाए। ये दोनों पाप हो रहे हैं। आपका प्रेम भी पाप हो रहा है और वह जिसके साथ रह रही है वहां भी पाप हो रहा है। यह डबल पाप चलाने की कोई जरूरत नहीं है। समाज इतना लिक्विड होना चाहिए कि यह बदलाहट हो जाए। आपस में पति-पत्नी बदल जाएं।

और सरलता से बदल जाएं। इसमें इतना दंगा-फसाद करने की जरूरत क्या है। अदालत में मुकदमा चलाओ, तीन साल का सर्टिफिकेट लो, फिर उसको गालियां दो कि यह व्यभिचारिणी है, तब बदलो। ये सब बिल्कुल नाजायज बातें हैं। यह इतना सरल होना चाहिए कि दो आदमी अलग होना चाहते हैं... एक आदमी भी जाकर...

रूस में उन्होंने कर लिया। यह बड़े मजे की बात की। बड़ी हिम्मत की बात की। अब रूस में तलाक देने में दोनों पार्टी के मौजूद होने की भी जरूरत नहीं है। दोनों में से एक व्यक्ति भी मजिस्ट्रेट को जाकर लिख कर दे दे कि हम इसको समाप्त करना चाहते हैं। बात समाप्त हो गई। इसमें कोई झगड़ा-फसाद करने की बात नहीं है।

तो जो आपका परिवार है वह जड़ नहीं होना चाहिए। मेरे हिसाब में लिक्विड होना चाहिए। उसमें रूपांतरित होने की क्षमता होनी चाहिए। जरूरी नहीं कि रूपांतरित हो। और तभी पता चलेगा आपको कि कितने परिवार सच्चे हैं, जब आपका लिक्विड परिवार होगा। अभी तो सब झूठ चल रहा है पूरा का पूरा।

अगर आपसे मैं पूछूं कि ये जो सौ परिवार हैं और अगर उन्हें परिपूर्ण स्वतंत्रता मिले और कोई निंदा नहीं है एक-दूसरे को बदलने में, तो उनमें से कितने अपने हैं जिन्हें हम लेने को राजी होंगे? तब पता चलेगा कि नैतिकता कितनी है? अभी चूंकि बदल नहीं सकते, इसलिए नहीं बदलते हैं। और नैतिकता की खोल ओढ़े खड़े हैं। यह कोई नैतिकता नहीं है। और चित्त तो बदलता ही रहेगा। आप कानून से शरीर को रोक सकते हैं, आप पर कानून लगा दिया है कि यह जो पत्नी है जिसको आपसे बांध दिया गया है, इसके अतिरिक्त आपका किसी स्त्री से कोई संबंध नहीं होगा। लेकिन मन संबंध बनाता रहेगा। वह खिड़की में से झांकता रहेगा। वह दूसरे के मकानों में देखता रहेगा। वह संबंध बनाता रहेगा। और वह जो मन संबंध बनाएगा, वह दुख का कारण होगा, वह पीड़ा का कारण होगा।

मेरा कुल कहना इतना है कि मनुष्य के जीवन की सारी की सारी व्यवस्था पुनर्विचारणीय हो गई है। परिवार भी पुनर्विचारणीय है। सेक्स रिलेशनशिप भी पुनर्विचारणीय है। मां-बेटे और बाप-बेटे का संबंध भी पुनर्विचारणीय है। ये सब संबंध सड़ गए हैं। अभी तक यह ख्याल था...

इजरायल में उन्होंने किबुत्ज पर प्रयोग किया, तो बड़े अदभुत परिणाम आए। अब तक यह ख्याल था कि अगर बच्चों को मां-बाप के पास नहीं पाला गया, तो फिर बच्चों में और मां-बाप में प्रेम नहीं हो सकेगा। क्योंकि प्रयोग भी नहीं किया गया था। लेकिन किबुत्ज में जो प्रयोग किया इजरायल में, उससे दंग रह गए वे, कि जो बच्चे किबुत्ज में पाले गए उनके और उनके मां-बाप के बीच जितना प्रेम है उतना जो बच्चे मां-बाप के पास रहे हैं उनके बीच कभी नहीं हो सकता। उसका कारण है। क्योंकि चौबीस घंटे मां के पास बच्चा रहता है, तो मां मारती भी है, डांटती भी है, झगड़ती भी है, तो बच्चे में डबल प्रवृत्तियां एक साथ पैदा होती हैं, जो सबसे बड़ी खतरनाक बात है। वह मां को कभी घृणा भी करता है, सोचता है कि मार क्यों न डालूं? भाग क्यों न जाऊं इससे? यह दुश्मन है मेरी। कभी मां को प्रेम भी करता है, वह पवित्र मालूम पड़ती है, उससे बड़ा कोई भी नहीं, उसके चरणों में, उसकी गोदी में सिर रख कर लेट जाता है, वह हाथ भी फेरती है।

एक ही ऑब्जेक्ट के प्रति दोहरी प्रवृत्तियां पैदा होती हैंः उसमें घृणा की भी और प्रेम की भी। और यह इतनी खतरनाक बात है कि एक ही व्यक्ति के प्रति दो तरह की घृणा और प्रेम की प्रवृत्तियां पैदा हो जाएं, तो उसका माइंड हमेशा के लिए कांफ्लिक्ट में हो गया। और अब जिंदगी में वह जिसको भी प्रेम करेगा, उसके साथ भी बुनियादी प्रवृत्ति साथ जुड़ी रहेगी; क्योंकि घृणा और प्रेम एसोसिएट हो गए। तो वह जिस स्त्री को प्रेम

करेगा, उसको घृणा भी करेगा। और वक्त बेवक्त उसकी गर्दन काट देने की भी सोचेगा, उसको बरबाद, मार डालने का भी सोचेगा। और वह जो स्त्री आई है वह भी उसकी डबल प्रवृत्तियां लेकर आई है।

तो किबुत्ज में जो प्रयोग हुआ, उन्होंने यह किया कि बच्चे को जैसे ही होश सम्हलना शुरू होता है--वह तो कम्युनिटी हॉल में उसको पालते हैं--मां आती है दूध पिलाने, तीन बार, चार बार, जितनी बार जरूरत होती है। कम्युनिटी हॉल उन्होंने बनाया हुआ है--चारों तरफ खेत हैं, उसके बीच में हॉल है। खेत में महिलाएं काम कर रही हैं--सब बच्चों के झंडे हैं, जिस बच्चे को रोना आता है उसका झंडा हॉल के ऊंचा कर दिया जाता है, उसकी मां अपना झंडा देख कर आकर बच्चे को दूध पिला जाती है। बच्चा सिर्फ मां के सुखद रूप को ही जानता है--वह उसे दूध पिलाने आती है, प्रेम करने आती है। बच्चा मां के दुखद रूप को कभी नहीं जान पाता। बच्चा बड़ा होता चला जाता है। दूसरा, होगा यह कि बच्चा बच्चों में पलता है। बच्चों के बूढ़ों के साथ पलने से इतना अनाचार हो रहा है, जिसका कोई हिसाब नहीं। क्योंकि उनके बीच कभी भी कोई समानता नहीं है। बूढ़े घर के मालिक हैं और बच्चों को उनके नीचे पलना पड़ता है।

बूढ़े उस समाज से पैदा हुए हैं जो कभी का मर चुका, और बच्चों को उस समाज में रहना पड़ेगा जो अभी पैदा नहीं हुआ है। और यह इतना टेंशन पैदा कर देता है उस बच्चे के मांइड में। माइंड उसका ऐसा होता है जो समाज मर चुका उसका, और जीएगा उस समाज में जो अभी पैदा ही नहीं हुआ। उसका मन हमेशा तकलीफ में रहने वाला है।

तो वह बच्चों के साथ पलते हैं बच्चे। और जो नर्सें भी उनको सम्हालती हैं, उन नर्सेज को भी तीन महीने से ज्यादा कोई बच्चे को नहीं सम्हालता। तीन महीने में नर्स बदल जाती है। तो उनका कहना है कि किसी एक व्यक्ति पर प्रेम की धारणा फिक्सड नहीं होनी चाहिए। एक व्यक्ति के फिक्सड होने से फिर उसको दूसरे व्यक्ति पर ले जाने में बहुत कठिनाई होती है। और यही कठिनाई है। बच्चा, बेटा मां के पास पलता है, वह मां को प्रेम करना सीखता है। फिर बीस साल के बाद एक दूसरी औरत को प्रेम करना पड़ता है, जो बड़ी कठिनाई का मामला है। वह औरत अगर ठीक उसकी मां जैसी मिल गई, तब तो ठीक। और कहां मिलेगी उसकी मां जैसी औरत? और तब संघर्ष शुरू हुआ। उसी एक औरत के प्रति उसका प्रेम फिक्सड हो गया। तो वह किबिस में यह करते हैं कि तीन महीने में वह औरतें बदलते रहते हैं। वह नर्स बदल जाएगी तीन महीने में, ताकि उसका किसी औरत से फिक्सड माइंड न रह जाए।

अभी उनका कहना है कि पति-पत्नी के झगड़े का कुल कारण इतना है कि पहले बच्चों की मांएं फिक्सड हो जाती हैं। और मां को तो पत्नी बनाया ही नहीं जा सकता। और मां को ही पत्नी की तरह चाहेगा उसका मन हमेशा। क्योंकि जिसको उसने प्रेम किया था, उसकी वह नीड बन गई उसके भीतर--मां कैसे उसको सुलाती थी, मां कैसे उसको खिलाती थी, मां कैसे उससे बोलती थी। और मां के साथ एक मजा था कि मां प्रेम देती थी, मांगती कभी नहीं थी। मां क्या प्रेम मांग सकती है छोटे से बच्चे से? वह अपनी पत्नी से भी प्रेम मांगता है, देने की फिकर नहीं है उसको। क्योंकि उसका तो फिक्सड माइंड हो गया।

तो वे तीन महीने में बदल देते हैं नर्स को। और पिछली दस-पच्चीस, चालीस, सौ, दो सौ औरतें उसके करीब से गुजरती हैं, उसके पास फिक्सड औरत नहीं होती दिमाग में। वह किसी भी औरत पर सुविधा से, लिक्विड माइंड है उसका, वह फिक्सड हो जाता है। और दूसरा मजा यह है कि बीस साल, पंद्रह-बीस साल, जब तक वह युनिवर्सिटी से आएगा, तो वह छुट्टियों में आएगा, दिन, दो दिन से ज्यादा नहीं रहेगा मां-बाप के पास। दिन, दो दिन लड़का जब घर आता है, तो न तो झगड़ा होता, न कलह होती, न उपद्रव होता, वह सिर्फ सुखद

रूप देखता है मां-बाप का। तो मजा यह हुआ कि किबुत्ज में पले हुए बच्चे अपने मां-बाप को जितना आदर और जितना प्रेम देते हैं, उतना किन्हीं बच्चों ने कभी नहीं दिया। मगर अब तक हमारा ख्याल यही था कि वह ऐसा उलटा होगा।

तो यह मेरा कहना है, उदाहरण के लिए मैंने कहा, मेरा कहना यह है कि जिंदगी के सब पहलू सड़ गए हैं, सड़े हुए हैं, और एक-एक पहलू को फिर से विचार करके, हिम्मत करके प्रयोग करने की जरूरत है। इसलिए चोट करता हूं किसी भी पहलू पर। वह कौन सा पहलू है इससे मुझे कोई मतलब नहीं है। चोट से तकलीफें होती हैं। क्योंकि वह बंधा हुआ मामला है। अगर मैं यह कहूंगा कि मां के पास बच्चे को पालना खतरनाक है, तो मां नाराज होंगी, बच्चे भी नाराज होंगे, बाप भी नाराज होगा। लेकिन खतरनाक है। बिल्कुल खतरनाक है। और अभी जो मैं इसकी जो बात कर रहा था पहले, अगर बच्चे को मां-बाप से अलग पाला जा सके, तो समाज कभी भी स्टेटिक नहीं हो पाएगा। समाज हमेशा डायनेमिक रहेगा। क्योंकि मां-बाप का जो ओल्ड माइंड है वह बच्चों को जकड़ नहीं पाएगा। इतनी जोर से नहीं जकड़ पाएगा। और जिंदगी ज्यादा खुशी की होगी।

एक मेरे मित्र गए इजराइल, तो उनको मैंने कहाः तुम किबुत्ज में जरूर जाकर देख कर आना, मुझे सब कहना। तो वे किबुत्ज के, सांझ को पहुंचे एक कम्युनिटी हॉल में, तो दंग रह गए! उन्होंने कहाः मैंने कभी जिंदगी में नहीं देखा था कि यह भी हो सकता है। बच्चे खाना खा रहे थे कम्युनिटी हॉल में--कोई चालीस-पचास बच्चे होंगे--बच्चे ही परोस रहे थे, बच्चे ही खा रहे थे। रंग-बिरंगे शानदार उन्होंने कपड़े पहने हुए थे। टेबल पर बच्चे नाच रहे थे। वहीं खाना चल रहा है टेबल पर, और कुछ बच्चे ट्विस्ट कर रहे हैं टेबल पर, छोटे बच्चे हैं। चारों तरफ बच्चे खेल-कूद भी कर रहे हैं, खा भी रहे हैं, खेल भी रहे हैं, नाच भी रहे हैं।

लिखा है कि मैंने पहली दफा जिंदगी में देखा कि ऐसे भी खाना खाया जा सकता है। लेकिन उनमें बड़ा फर्क है। जिसको जो करना है, वे कर रहे हैं। अच्छे बच्चे हैं, उनको सब मालूम है। थोड़े से बड़े हैं उनसे। ज्यादा बड़े भी नहीं, इसलिए ऑथेरिटी पैदा कभी नहीं हो पाती। क्योंकि थोड़े से बड़े बच्चे को थोड़ा तो आदर देता है वह, लेकिन कुछ ऐसा नहीं है कि तुम ही सब जानते हो, वह छोटा भी... तुम भी अगर थोड़ा सा जानते हो, ऑथेरिटी कि हम जानते हैं, वह कभी ऑथेरिटी उसके दिमाग में नहीं आती। और उसने देखा कि घंटों भर वे लोग खाना खा रहे थे। उनके शिक्षक भी आस-पास से देखते, वे अंदर भी नहीं जा रहे थे। उसने पूछा जाकर, उन्होंने कहा कि खाना खाते वक्त हम इनको रोकते नहीं; इनको मौज से, उन्हें जैसे खाना है। हम बूढ़े हैं, हम इतनी मौज से नहीं खा सकते। और हम उनकी मौज में बाधा डालेंगे वहां जाकर कि बंद करो यह शोरगुल, यह क्या कर रहे हो, इतना खाना खराब चला जाएगा। लेकिन खाना खराब जाना उतना बुरा नहीं है जितना उदास बैठ कर खाना खाना। अभी वे बच्चे हैं, अभी उनको खेल-कूदने दो, गाने दो, खाने दो।

अब ये बच्चे जब खाने की मेज पर कभी भी जाएंगे, बीस साल बाद, तो इनके खाने की मेज वैसी उदास नहीं होगी जैसी हमारी है। बीस साल कितने... वह मौज उनके साथ चली जाएगी जिंदगी की।

तो जिंदगी को पूरा का पूरा सड़ा-गला हमने जो ढांचा दिया है वह गलत है एक ढंग से, उसको, उसको उखाड़ कर फेंक देना है। और एक-एक जड़ उसकी तोड़ देनी है।

प्रश्नः तो आप कैसे समाज की रचना का ख्याल करते हैं?

अभी तो रचना का ख्याल नहीं करता, अभी तो विध्वंस का ख्याल करता हूं।

प्र्श्नः लेकिन विध्वंस के बाद तो रचना होनी चाहिए?

हां, तो जैसा मैंने कहा, उदाहरण के लिए, मैंने कहा न, उदाहरण के लिए मैंने कहा कि मां-बाप और बच्चों का संबंध तोड़ कर ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जहां मां-बाप से बच्चों का कम से कम सुख-सुखद संपर्क हो। वह पाजिटिव हो गया है उसका हिस्सा। ऐसे एक-एक चीज पर।

छठवां प्रवचन

संतति-नियमन

मेरे प्रिय आत्मन्!

संतति-नियमन या परिवार नियोजन पर मैं कुछ कहूं, उसके पहले दो-तीन बातें मैं आपसे कहना चाहूंगा।

पहली बात तो यह कहना चाहूंगा कि आदमी एक ऐसा जानवर है जो इतिहास से कुछ भी सीखता नहीं। इतिहास लिखता है, इतिहास बनाता है, लेकिन इतिहास से कुछ सीखता नहीं। और यह इसलिए सबसे पहले कहना चाहता हूं कि इतिहास की सारी खोजों ने जो सबसे बड़ी बात प्रमाणित की है, वह यह कि इस पृथ्वी पर बहुत से प्राणियों की जातियां अपने को बढ़ा कर पूरी तरह नष्ट हो गईं। इस जमीन पर बहुत शक्तिशाली पशुओं का निवास था, लेकिन वे अपने को बढ़ा कर नष्ट हो गए।

आज से पांच लाख वर्ष पहले... और जो मैं कह रहा हूं वह वैज्ञानिक अनुसंधान के आधार पर कहता हूं--जमीन पर हाथी से भी बड़ी छिपकलियां थीं। अब तो आपके घर में जो छिपकली बची है वही उसका एकमात्र वंशज है। वह इतना शक्तिशाली जानवर था। उसकी अस्थियां तो उपलब्ध हो गई हैं, वह सारी पृथ्वी पर फैल गया था। अचानक विदा कैसे हो गया? उसने इतने बच्चे पैदा कर लिए, इतनी संख्या बढ़ा ली कि जमीन उसके रहने को, उसको बसाने को असमर्थ हो गई। किसी युद्ध में वह प्राणी नहीं मरा, कोई एटम बम उस पर नहीं गिरा, भीतर से ही उसकी संख्या का एक्सप्लोजन उसकी मृत्यु बन गई। ऐसे और सैकड़ों प्राणी इस पृथ्वी पर रहे हैं और अपने को बढ़ा कर ही समाप्त हो गए।

मनुष्य-जाति फिर उस बिंदु के करीब आ रही है जहां वह अपने को बढ़ा कर समाप्त हो सकती है। बुद्ध के जमाने में इस देश की आबादी दो करोड़ थी। लोग अगर थोड़े खुशहाल थे तो कोई सतयुग के कारण नहीं। जमीन थी ज्यादा, लोग थे कम। अतीत की जो हम स्मृतियां लाए हैं खुशहाली की, वे खुशहाली की स्मृतियां नहीं हैं। वे स्मृतियां हैं जमीन के ज्यादा होने की, लोगों के कम होने की। भोजन ज्यादा था, लोग कम थे, इसलिए खुशहाली थी।

सारी मनुष्य-जाति की संख्या, और अगर हम दो हजार साल पीछे चले जाएं बुद्ध से; तो आज से पांच हजार साल पहले सारी पृथ्वी की संख्या ही दो करोड़ थी। आज पृथ्वी की संख्या साढ़े तीन अरब से ऊपर है, साढ़े तीन सौ करोड़ से ऊपर है। पृथ्वी उतनी ही है, संख्या साढ़े तीन सौ करोड़ से ऊपर है। और हम प्रतिदिन उस संख्या को बढ़ा रहे हैं। वह संख्या हम इतनी तेजी से बढ़ा रहे हैं कि अंदाजन डेढ़ लाख लोग रोज बढ़ जाते हैं। जितनी देर मैं यहां घंटे भर बात करूंगा उतनी देर मनुष्यता शांत नहीं बैठी रहेगी। उस घंटे भर में हजारों लोग बढ़ चुके होंगे। यह सदी पूरी होते-होते, अगर दुर्भाग्य से आदमी को समझ न आई तो इस सदी के पूरे होते-होते यानी आज से तीस वर्ष बाद, जमीन पर कोहनी हिलाने की जगह न रह जाएगी। तब सभाएं करने की बिल्कुल जरूरत नहीं पड़ेगी। हम चौबीस घंटे सभाओं में होंगे।

यह हो नहीं पाएगा। यह हो नहीं पाएगा, कोई न कोई सौभाग्य, युद्ध, महामारी--कोई न कोई सौभाग्य मैं कह रहा हूं--इसे होने नहीं देगा। लेकिन अगर यह महामारी और युद्ध से हुआ तो मनुष्य की बुद्धि पर बड़ा कलंक लग जाएगा। जिन सिनासार की मैंने बात की, जिन छिपकलियों की बात की, जो हाथियों से बड़ी थीं,

और अब नहीं हैं, उनके पास कोई बुद्धि न थी, शरीर बहुत बड़ा था। वे कोई उपाय न कर सके, वे कुछ सोच न सके, वे मर गए।

हम सदा से ऐसा सोचते रहे हैं कि आदमी सोचने वाला प्राणी है, हालांकि आदमी सबूत नहीं देता है इस बात का। और अगर पचास सालों से आदमी को जितनी समझने की कोशिश की गई है, उतना ही पुराना विश्वास कमजोर हुआ है। वह जो रेशनल बीइंग का ख्याल था, वह कमजोर हुआ है। आदमी भी विचारवान प्राणी नहीं मालूम पड़ता है, क्योंकि वह भी जो कर रहा है अत्यंत विचारहीन है। और सबसे बड़ी विचारहीनता जो हम कर सकते हैं आज, वह संख्या को बढ़ाए जाने की है। इस समय वह आदमी उतना बुरा नहीं है जो किसी की हत्या कर देता है; उतना बड़ा क्रिमिनल नहीं है। बल्कि कौन जाने वह आदमी कुछ अच्छा ही काम कर रहा है मनुष्य के भविष्य को निर्मित करने के लिए! मैं नहीं कहता कि कोई हत्या करे। कोई हत्यारे को हत्या करने के लिए नहीं कह रहा हूं। लेकिन हत्या अब उतना बड़ा अपराध नहीं है जितना एक नये बच्चे को जन्म देना बड़ा अपराध है, क्योंकि हत्या से एक आदमी मरेगा और एक बच्चे को जन्म देने की प्रक्रिया अगर जारी रहती है तो पूरी मनुष्यता भी मर सकती है।

यह जो संभावना बनी कि इतनी संख्या हो जाए, यह संभावना मनुष्य की अपनी खोजों का परिणाम है। इथोपिया में लोग बहुत सी बीमारियों से मरते हैं जो बीमारियां दूसरे मुल्कों में समाप्त हो गई हैं। इथोपिया का सम्राट हेल सिलासी अमरीका से एक छोटा सा आयोग बुलाया डाक्टरों का जांच-पड़ताल के लिए इथोपिया में कि वहां की बीमारियों को कैसे रोका जा सके। उन्होंने जांच-पड़ताल की और रिपोर्ट दी। और रिपोर्ट में लिखा कि इथोपिया के लोग जो पानी पीते हैं वह बहुत ही संक्रामक कीटाणुओं से भरा हुआ है। और इथोपिया में लोग सड़क के किनारे गड्ढों में जो पानी भर जाता है वर्षा का, उसको भी पीने के काम में ले आते हैं। उसमें जानवर स्नान भी करते रहते हैं, पीते भी रहते हैं, और लोग भी उसको पी लेते हैं। उस कमीशन ने कहा कि अगर शुद्ध पानी पिलाने की चिंता की जाए तो इथोपिया की बहुत सी बीमारियां विदा हो सकती हैं।

सम्राट ने वह कमीशन के आयोग की जो रिपोर्ट थी उसे रख कर कहा कि आपकी खोज के लिए धन्यवाद! लेकिन यह काम मैं कभी करूंगा नहीं। आयोग ने कहा, आप क्या कह रहे हैं? लोग मर रहे हैं! उस सम्राट ने कहा कि पहले मैं उन्हें बचाने का इंतजाम करूं और कल फिर उन्हें समझाने जाऊं कि बच्चे पैदा मत करो! यह झंझट दोहरी हो जाएगी। इधर मैं बचाऊं उनको बीमारी से और उधर बच्चे बढ़ेंगे, और कल फिर जगह-जगह लिखना पड़ेगाः कम बच्चे होते हैं अच्छे। उस सबकी पंचायत में मैं नहीं पड़ूंगा। वे अपने आप ही कम हो जाते हैं।

कठोर लगती है इथोपिया के सम्राट की बात, लेकिन हम सबको देख कर ऐसा लगता है कि शायद वह आदमी ठीक ही कहता है। आदमी ने मृत्यु दर कम कर दी और अनुपात बिगाड़ दिया। आज से डेढ़ सौ साल पहले, दो सौ साल पहले दस बच्चे पैदा होते तो नौ बच्चों के मरने की संभावना थी। आज दस बच्चे पैदा होते हैं तो नौ के बचने की संभावना हो गई है। और वह जो एक मर रहा है वह भी हमारी कुछ नासमझी से मर रहा है, नहीं तो उसको भी मरने की जरूरत नहीं है। और आज से दो सौ साल पहले दस बच्चों में वह जो एक बच जाता था, वह परमात्मा की कृपा से बचता था, हमारी समझदारी से नहीं। हमारी समझदारी से तो नौ मरते थे।

तो एक-एक आदमी बीस-पच्चीस बच्चे भी पैदा करता था, क्योंकि बीस-पच्चीस बच्चे पैदा करके भी दो बच्चे बच जाएं तो बहुत था। आदत पुरानी है। बीस-पच्चीस बच्चे पैदा हम अभी भी करना चाहेंगे, लेकिन अब बीस-पच्चीस बच्चे ही बच जाते हैं।

मनुष्य ने मृत्यु दर पर रोक लगा दी है, बीमारी पर रोक लगा दी है। आज से पांच हजार वर्ष पुरानी जितनी कब्रें मिली हैं, उनमें जो हड्डियां मिली हैं, उनके निरीक्षण की खबर बड़ी अदभुत है। वह खबर यह है कि आज से पांच हजार साल पहले पच्चीस वर्ष सबसे बड़ी उम्र थी। पच्चीस वर्ष से पुरानी हड्डी कोई भी नहीं मिलती। पच्चीस साल की उम्र आखिरी उम्र रही हो... ।

आज उम्र कई मुल्कों में सत्तर, अस्सी, पच्चासी के बिंदु को छू गई है। रूस में आज हजारों ऐसे लोग हैं जो डेढ़ सौ वर्ष के करीब हैं या पार कर गए हैं। और जितनी हमारी वैज्ञानिक समझ बढ़ी है उतनी संभावना बढ़ती जाती है कि हम चाहें तो आदमी की उम्र को अंतहीन लंबा कर सकते हैं।

यह हमारी संभावना बढ़ गई है। विज्ञान ने मौत को पीछे हटा दिया। लेकिन जन्म की, जो पैदा करने की हमारी आदत है वह अवैज्ञानिक है। वह उन दिनों की है जब विज्ञान नहीं था। प्रकृति जो है, भूल-चूक न हो जाए, इसलिए बहुत अबनडेंस में प्रयोग करती है, बहुत अति में प्रयोग करती है। जहां एक गोली मारने से काम चल जाए वहां प्रकृति हजार गोली मारती है। क्योंकि अंधा खेल है, हजार में एक लग जाए तो बहुत। आदमी निशानेबाज हो गया है। अब वह एक ही गोली में मार सकता है लेकिन आदत उसकी पुरानी है।

प्रकृति के अबनडेंस को समझना बहुत जरूरी है। एक बीज आप लगाते हैं, हजार-लाख बीज हो जाते हैं। यह इस बात की कोशिश है कि लाख बीज में कम से कम एक तो फिर पौधा बन सकेगा। एक पुरुष अपनी साधारण स्वास्थ्य की जिंदगी में चार हजार संभोग कर सकता है, सहज। चार हजार। और अगर प्रत्येक संभोग बच्चा बन सके तो एक-एक आदमी चार-चार हजार बच्चों का बाप हो सकता है। लेकिन ये चार हजार नहीं हो पाते, क्योंकि स्त्री की क्षमता बहुत कम है। वह वर्ष में एक ही बच्चे को जन्म दे सकती है।

इसलिए जिन मुल्कों में बच्चों की ज्यादा जरूरत थी, जैसे मुसलमान मुल्कों में, क्योंकि युद्ध उन्हें करना था और लड़के मर जाते। इसलिए मोहम्मद ने चार-चार शादियों की छूट दी। पुरुष कम हों, औरतें ज्यादा हों, तो संख्या को कोई खतरा नहीं है, क्योंकि एक पुरुष पचास स्त्रियों से बच्चे पैदा कर सकता है। लेकिन अगर स्त्रियां कम हो जाएं और पुरुष कितने ही हों तो कुछ फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि स्त्री की क्षमता बहुत सीमित है। वह एक ही बच्चे को वर्ष में जन्म दे दे तो बहुत है।

चार हजार मैं कह रहा हूं, अगर एक-एक संभोग बच्चा बन जाए तो चार हजार बच्चे एक पुरुष पैदा कर सकता है। लेकिन एक संभोग में जितने वीर्याणु जाते हैं उसमें एक करोड़ बच्चे पैदा हो सकते हैं। एक संभोग में एक करा.ेड वीर्याणु जाते हैं। अगर इसको भी हम हिसाब में लें तो एक करोड़ गुणित चार हजार, चार हजार करोड़ बच्चे एक पुरुष के व्यक्तित्व से पैदा हो सकते हैं। एक पुरुष इतने वीर्याणु पैदा करता है अपनी सामान्य उम्र में कि इस पृथ्वी पर जितने लोग हैं उससे कई सौ गुना ज्यादा। अभी साढ़े तीन अरब लोग हैं, साढ़े तीन सौ करोड़। चार हजार करोड़ बच्चों का बाप एक आदमी बन सकता है--बनता तो है तीन-चार का, छह-सात का, आठ का, लेकिन प्रकृति भूल-चूक न हो जाए इसलिए इंतजाम बहुत अतिरेक करती है।

तो हमने मृत्यु दर तो रोक ली और प्रकृति का जो अतिरेक का इंतजाम है उस अतिरेक को हम जारी रखें तो मनुष्य अपनी ही संख्या के दबाव से मर सकता है। और अब तो और नई संभावनाएं खुल गई हैं। वे संभावनाएं हमारी जो सामान्य सीमाएं थीं उनके भी पार ले जाती हैं। जैसे, आज वीर्याणु को सुरक्षित रखा जा सकता है। पुराने जमाने में यह संभावना न थी। आप रहते दुनिया में तो ही बाप बन सकते थे। अब आपका रहना आवश्यक नहीं है। आप हजार साल बाद भी किसी बेटे के बाप बन सकते हैं। आपके वीर्याणु को सुरक्षित रखा जा सकता है।

अब जरूरी नहीं है कि बाप मौजूद ही हो तभी बाप बने। अब पोस्ट-फादरहुड भी संभव है। बाप मर चुका हजार साल पहले, लेकिन उसका वीर्याणु सुरक्षित रह सकता है। एक विशेष तापमान पर उसका वीर्याणु जिंदा रह सकता है और वह वीर्याणु कभी भी उपयोग किया जा सकता है। स्त्री के भी अंडे को बचाया जा सकता है और कभी भी कोई मां बन सकती है। अब मां बनने के लिए बेटे को पेट में ढोना ही अनिवार्य शर्त नहीं है।

ये सारी संभावनाएं जीवन को बचाने की बढ़ गईं, मौत को दूर हटाने की संभावना बढ़ गई, लेकिन हमारी जो आदतें हैं, हमारे जीवन के प्रति जो ढंग हैं, वे पूर्व-वैज्ञानिक स्थिति के हैं। इसलिए हम बच्चे पैदा किए चले जाते हैं। और हमें कुछ ख्याल भी नहीं है कि जब बच्चा पैदा होता है तो अब भी हम बैंड-बाजा बजाते हैं। यह बैंड-बाजा उस दिन का है जब दस बच्चे पैदा होते और नौ मरते। स्वाभाविक, उस दिन बैंड-बाजा बजाने की बात थी। दस बच्चे पैदा होते और एक बचता, नौ मरते, तो जो बच्चा बच जाता उसके लिए बैंड-बाजा बजता, गांव में मिठाई बंटती, फूल बंटते, झंडियां लगतीं, स्वागत होता, यह बिल्कुल स्वाभाविक था।

आदत हमारी वही है। अब एक-एक बच्चा बहुत खतरनाक है, लेकिन बैंड-बाजा अब भी हम बजा रहे हैं, झंडियां लगा रहे हैं। एक-एक आदमी को ख्याल नहीं है कि स्थिति पूरी बदल गई है। पूरी स्थिति बदल गई है। अब एक-एक बच्चा जो जमीन पर कदम रख रहा है वह एक्सीलरेट कर रहा है पूरी मनुष्य-जाति की मौत को, तीव्रता से करीब ला रहा है। यह मौत की जो बहुत अनजान, अचेतन हमारे मन में तीव्र छाया पड़ रही है इस छाया के बहुत परिणाम होने शुरू हुए हैं। जैसे कि बड़े नगरों में, कलकत्ता है, लोग सोचते हैं कि नक्सलवाद कोई कम्युनिज्म की बात है। ऊपरी अर्थों में ऐसा ही दिखाई पड़ता है। लेकिन जो बहुत गहरे खोजते हैं उनकी खोज यह है कि आदमी शांति में अगर रहें तो उनके बीच एक डेफिनिट स्पेस चाहिए, नहीं तो वे शांति में नहीं रह सकते। एक सुनिश्चित अवकाश चाहिए।

चूहों पर बहुत प्रयोग हुए हैं, शेरों पर बहुत प्रयोग हुए हैं, और उन्होंने बहुत अदभुत परिणाम दिए हैं। आदमी पर प्रयोग करने की हिम्मत तो अब भी आदमी नहीं जुटा पाया है, नहीं तो बहुत साफ परिणाम हो जाएं। एक शेर को जिंदा रहने के लिए दस वर्ग मील की जगह चाहिए। अगर दस वर्ग मील की जगह में दस-पांच शेरों को रख दिया जाए तो उनके पागल होने की संभावना बढ़ जाती है।

यह जान कर आप हैरान होंगे कि जंगल में कोई जानवर आमतौर से पागल नहीं होता और अजायबघर में आमतौर से जानवर पागल हो जाता है। और अजायबघर में और जंगल में सिर्फ एक फर्क है, लिविंग स्पेस कम हो जाती है। और बल्कि अजायबघर में जंगल की बजाय ज्यादा सुविधाएं हैं, ज्यादा वैज्ञानिक भोजन है, ज्यादा पीछे डाक्टर लगा है; सारा इंतजाम है जो जंगल में नहीं है--न कोई डाक्टर है, न भोजन की उचित सुविधा है, जानवर को भूखा भी रहना पड़ता है। लेकिन जंगल का जानवर पागल नहीं होता और अजायबघर के जानवर पागल हो जाते हैं।

जब मैंने पहली दफा अजायबघरों का अध्ययन किया और मुझे पता चला कि अजायबघर में जंगल के जानवर पागल हो जाते हैं, तो मुझे ख्याल हुआ कि हमने आदमी के समाज को कहीं अजायबघर तो नहीं बना दिया है? क्योंकि आदमी जितना पागल हो रहा है उतना कोई जानवर पागल नहीं हो रहा है। और यह पागल होने का अनुपात भी जितनी सघन होती जाती है संख्या, वहां बढ़ता चला जा रहा है; उसी अनुपात में बढ़ता चला जाता है।

आज भी आदिवासी हमारी बजाय कम पागल होता है। और हम भी आज बंबई की बजाय कम पागल होते हैं। और बंबई भी अभी न्यूयार्क की बजाय कम पागल होता है। आज अमरीका में मरीजों के लिए जितने

बेड हैं, जितने बिस्तर हैं, उसमें आधे बिस्तर मानसिक मरीजों के लिए हैं। यह अनुपात बहुत अदभुत है। पचास प्रतिशत बेड अमरीका के मानसिक मरीजों के लिए हैं और प्रतिदिन पंद्रह लाख आदमी मानसिक इलाज के लिए पूछताछ कर रहे हैं। असल में शरीर का डाक्टर अमरीका में आउट ऑफ डेट हो गया है। मन का डाक्टर आधुनिक, अत्याधुनिक चिकित्सक है।

यह पागलपन तीव्रता से बढ़ता चला जाएगा। यह कई रूपों में प्रकट होगा। अब कलकत्ता में या बंबई में अगर पागलपन फूटता है और लोग बस जलाते हैं और ट्राम जलाते हैं, तो राजनैतिक नेता जो बातें हमें बताता है कि यह कम्युनिज्म का प्रभाव है, यह फलां वाद का प्रभाव है, यह ढिकां वाद का प्रभाव है, ये अखबार के तल की बुद्धि से खोजी गई बातें हैं। जिन्होंने अखबार से ज्यादा जिंदगी में और कुछ भी नहीं सोचा और खोजा है।

वैसे भी राजनैतिक नेता होने के लिए बुद्धि की कोई जरूरत नहीं होती; बल्कि बुद्धि हो तो राजनैतिक नेता होना जरा मुश्किल हो जाता है; क्योंकि नेता होने के लिए अनुयायियों के पीछे चलना पड़ता है। और जहां बुद्धू अनुयायी हों वहां नेता बुद्धिमान होना बहुत मुश्किल है। उसे बुद्धू होना ही चाहिए, निष्णात बुद्धू होना चाहिए। राजनैतिक नेता कहता है कि कम्युनिज्म है, फलां है, ढिकां है, यह सब ऊपरी बकवास है; असली सवाल भीतर लिविंग स्पेस कम होती जा रही है।

सात्र ने एक छोटी सी कहानी लिखी है। कहानी लिखी है कि सुना था मैंने नरक के संबंध में कि वहां भट्टियां जलती हैं और पापी उन भट्टियों में जलाए जाते हैं। लेकिन मुझे कभी बहुत डर नहीं लगा। बल्कि कई दफे ऐसा भी लगा कि स्वर्ग जाना कुछ ठीक नहीं, मोनोटोनस होगा। ऐसे भी साधु-संत मोनोटोनस होते हैं, उनके साथ रहो तो बहुत जल्दी ऊब जाते हैं। इसलिए लोग जल्दी दर्शन करके चले जाते हैं। दर्शन शायद इसीलिए खोजना पड़ा ताकि ज्यादा देर साथ न रहना पड़े। नमस्कार और विदा।

साधु-संत जो हैं उबाने वाले हो जाते हैं। असल में एक सा ही स्वर बजता रहे तो उबाने वाला हो ही जाता है। पापी आदमी थोड़ा रुचिपूर्ण होता है, इंट्रेस्टिंग होता है। सच तो यह है कि अच्छे आदमी के ऊपर कोई कहानी ही नहीं लिखी जा सकती। अच्छे आदमी की कोई कहानी ही नहीं होती। कहानी सिर्फ बुरे आदमी की होती है। अच्छे आदमी की असल में कोई बायोग्राफी नहीं होती, बुरे आदमी की होती है।

तो सात्र को ख्याल है मन में कि स्वर्ग में तो कुछ रस न होगा। वहां तो दुनिया भर के सब उबाने वाले लोग इकट्ठे होंगे। और बैठे होंगे अपनी-अपनी सिद्ध-शिलाओं पर। वहां कुछ करने को ही नहीं बचा होगा। नर्क देखने लायक होगा। दुनिया भर के पापी जहां इकट्ठे हों वहां जिंदगी बड़ी रसपूर्ण होगी और वहां घटनाएं घटती होंगी फिनॉमिनल, ऐसी घटनाएं घटती होंगी जो कि सदियों तक लोग चर्चा करें, जहां सारे पापी इकट्ठे हो गए हैं!

लेकिन एक रात सपना उसने देखा कि वह नर्क में चला गया है। लेकिन वहां न बत्तियां हैं, न आग जल रही है, न कोई सड़ाया जा रहा है, न कोई गलाया जा रहा है--बल्कि एक और दूसरी मुसीबत है जो ख्याल में ही नहीं थी। वह यह है कि एक छोटा सा कमरा है जिसमें कोई एक्जिट नहीं है, जिसमें बाहर जाने का उपाय नहीं है, द्वार नहीं है। एक छोटा कमरा है और बाहर जाने का द्वार नहीं है। और तीन आदमी हैं। और तीन आदमियों के बस खड़े रहने के लायक जगह है। जरा हिलो-डुलो कि दूसरे से छू जाते हैं। और तीनों में से कोई किसी की भाषा नहीं समझता है। और तीनों को साथ रहना पड़ता है, प्राइवेसी बिल्कुल नहीं है। बस वह इतना कमरा है, बस वे तीन आदमी हैं, कोई किसी की भाषा नहीं समझता है। जागो तो उन तीन को देखते रहो, सोओ तो वे तुमको देखते रहें। कुछ भी करो, वे तीन वहां हैं। पंद्रह मिनट बाद ही बस तीनों पागल होने लगते हैं। किसी ने

किसी को कुछ किया नहीं, लेकिन लिविंग स्पेस नहीं है, बीच में जगह नहीं है। और जब जगह नहीं होती तो प्राइवेसी खतम हो जाती है। प्राइवेसी के लिए जगह चाहिए।

गरीब की सबसे बड़ी जो दुविधा है, वह है प्राइवेसी का अभाव--भोजन नहीं, कप.ड़ा नहीं। गरीब का सबसे बड़ा दुख है कि उसकी प्राइवेट जिंदगी नहीं हो सकती। वह अगर अपनी पत्नी से भी बात कर रहा हो तो भी पड़ोसी सुनता है। वह अपनी पत्नी से भी प्रेम नहीं कर सकता बिना इसके कि उसके बेटे-बेटी जान लें। गरीब की सबसे बड़ी तकलीफ है कि वह अकेले में नहीं हो सकता। उसकी प्राइवेसी जैसी कोई चीज नहीं है।

समृद्धि का एकमात्र सुख है कि आप अकेले में हो सकते हैं और दुनिया और अपने बीच स्पेस पैदा कर सकते हैं, जगह पैदा कर सकते हैं, बड़ी जगह पैदा कर सकते हैं। और जितनी आपके और दूसरों के बीच जगह बढ़ जाती है, उतना ही चित्त शांत होता है। दूसरे की मौजूदगी तनाव लाती है। यह आपने कभी ख्याल न किया होगा कि दूसरा कुछ भी न करे, सिर्फ मौजूद हो जाए, तो तनाव शुरू हो जाता है।

आप रास्ते पर चले जा रहे हैं अकेले, आप दूसरे आदमी होते हैं। रास्ता सन्नाटा है, कोई भी नहीं है, आप बिल्कुल दूसरे आदमी होते हैं। हो सकता है, अपने से बात कर रहे हों। मौज में आ गए हों, गीत गुनगुना रहे हों। वह गीत जो अपने बेटे को आपने कभी नहीं गुनगुनाने दिया। लेकिन दो आदमी निकल आए सड़क पर, बस आप बदल गए। सिर्फ दो आदमियों की मौजूदगी आपको तत्काल टेंस कर देती है।

अगर बहुत ठीक से समझें तो दि अदर इ.ज दि टेंशन--वह जो दूसरा है, वही तनाव है। वह जो दूसरा है। और वह दूसरे की मौजूदगी बढ़ती जा रही है। चारों तरफ कोई न कोई मौजूद है। सब तरफ कोई न कोई मौजूद है। कहीं भी चले जाएं, कोई न कोई मौजूद है। अकेले होने का कोई उपाय नहीं। इससे एक गहरा तनाव आदमी के मन पर बैठ रहा है। वह तनाव बढ़ती हुई संख्या का सबसे खतरनाक परिणाम है।

राजनीतिज्ञों को उसका पता नहीं है, क्योंकि वह उनके लिए सवाल नहीं है। उनके लिए सवाल यह है कि भोजन पूरा हो जाए, कपड़ा पूरा हो जाए। न हो पाए तो क्या होगा, उनके लिए सवाल यह है। मेरे लिए सवाल यह है कि अगर संख्या बढ़ती चली गई तो आदमी आत्मा खो देगा; क्योंकि आत्मा अकेलेपन में फ्लावर होती है। वह अकेलेपन में खिलती है, लोनलीनेस में।

लेकिन लोनलीनेस नहीं है। पहाड़ पर जाओ तो पीछे और आगे कारें लगी हुई वहां भी पहुंच जाती हैं। बीच पर जाओ तो आपके पहले भी कारें हैं, पीछे भी कारें हैं। अमरीका का बीच देखने लायक हो गया है। लोग तीस-तीस, चालीस-चालीस, पचास-पचास, सौ-सौ मील छुट्टी के दिन भागे हुए चले जा रहे हैं। लेकिन गाड़ियां नेक टु नेक फंसी हैं। भाग रहे हैं कि एकांत में जा रहे हैं। लेकिन बहुत लोग जा रहे हैं वहां एकांत में। और बीच पर पहुंचे तो लाख आदमी वहां खड़े हैं!

भीड़ के बाहर होना मुश्किल हुआ जा रहा है। महावीर और बुद्ध बड़े ठीक मौके पर हो गए; अब होते तो पता चलता! अब जिसको होना है उसको पता चल रहा है कि क्या कठिनाई है। लिविंग स्पेस नहीं बची है, अकेले खड़े नहीं हो सकते। अकेला होना असंभव है। और जो आदमी अकेला न हो पाए, वह आदमी ठीक अर्थों में जी ही नहीं पाता। वह बाहर ही बाहर घूमता रहता है! कोई न कोई मौजूद है, कोई न कोई मौजूद है, सब तरफ कोई न कोई मौजूद है। कहीं न कहीं से कोई न कोई देख रहा है।

यह जो तनाव, यह जो इनर टेंशन है, इसका विस्फोट होगा। नई-नई शक्लों में यह डिस्ट्रक्शन बन जाएगा। तो दूसरे को मिटाने की इच्छा पैदा होती है। अब वह इच्छा बहुत रूप लेगी। पहली बात तो वह रेशनल बनेगी, बुद्धि खोजेगी। गरीब कहेगा, अमीर को मिटाना है; क्योंकि इस अमीर की वजह से हम शांत नहीं

हो पाते हैं। कम्युनिस्ट कहेगा कि कम्युनिस्ट विरोधी को मिटाना है; इसके बिना हम जी नहीं सकते। हिंदू कहेगा मुसलमान को मिटाना है, मुसलमान कहेगा हिंदू को मिटाना है।

बहुत गहरे में हम दूसरे को मिटाना चाहते हैं, जगह बनाना चाहते हैं। तो गुजराती कह रहा है, महाराष्ट्रियन को मिटाना है। महाराष्ट्रियन कह रहा है, गुजराती को मिटाना है। बंगाली कह रहा है, मारवाड़ी को न टिकने देंगे कलकत्ते में। ये झगड़ा मारवाड़ी, गुजराती, महाराष्ट्रियन, हिंदू और मुसलमान का नहीं है, यह तो ऊपर से हमने शक्लें दी हैं, झगड़े को शेप दिए हैं। झगड़ा गहरे में यह है कि जगह बनानी है, दूसरे को हटाना है। अफ्रीकन कह रहा है, गैर-अफ्रीकन हटो। अमरीकी कह रहा है, गैर-अमरीकी को न घुसने देंगे। आस्ट्रेलियन कह रहा है, बस बंद दरवाजा, अब कोई भीतर न आ सकेगा। चीनी कह रहा है, बंद कैसे करोगे दरवाजा! हम इतने ज्यादा हो रहे हैं कि हम सब दरवाजे तोड़ कर घुस जाएंगे।

कोई चीन का कसूर नहीं है हिंदुस्तान पर हमला, संख्या का भारी दबाव है। जैसे किसी थैले में जरूरत से ज्यादा चीजें भर दी हैं और वह थैला फटने लगा है और चारों तरफ चीजें गिरने लगी हैं--ऐसी चीन की हालत है। सत्तर, पचहत्तर, अस्सी करा.ेड--चीन की सामर्थ्य के बाहर हो गई--थैला छोटा पड़ गया, आदमी ज्यादा हैं। वे चारों तरफ गिर रहे हैं और उनका कोई उपाय नहीं है।

सारी दुनिया जिस तकलीफ में खड़ी है आज, वह है कि आदमी और आदमी के बीच जगह चाहिए। अगर जगह खत्म हो जाएगी तो बड़ा मुश्किल हो जाएगा। चूहों पर बहुत प्रयोग हुए हैं। बड़े अदभुत अनुभव हुए हैं। अनुभव ये हैं कि एक चूहे को भी रहने के लिए जगह चाहिए। रहने के लिए ही नहीं सिर्फ, दूसरे चूहे और उसके बीच में एक खास फासला चाहिए। कभी-कभी मिलें, मुलाकात हो, फिर अलग हो जाएं, नहीं तो कठिनाई हो जाती है। तो चूहों की लिविंग स्पेस को कम करके बहुत प्रयोग किए गए हैं। और पाया गया कि कितने चूहे इकट्ठे रख दिए जाएं एक कमरे में तो चूहे पागल होने शुरू हो जाते हैं; और कितने चूहे कम किए जाएं तो वे स्वस्थ होने शुरू हो जाते हैं।

जंगल में जाकर आपको जो अच्छा लगता है उसका कारण जंगल कम, दूसरे लोगों का न होना ज्यादा है। पहाड़ पर जाकर आपको अच्छा लगता है उसका कारण पहाड़ कम, वह दि अदर, वह दूसरा नहीं है आंख गड़ाए हुए कि आपके कपड़ों के भीतर देख रहा है चारों तरफ से; चारों तरफ आंखें ही आंखें घेरे हुए हैं; वे नहीं हैं वहां, आप हलके हो पाते हैं, आप लेट पाते हैं, जो आपको करना होता है कर पाते हैं। वह असंभव हुआ जा रहा है।

मनुष्य का मन मरने के पहले बिल्कुल पागल हो जाएगा। अगर इस पृथ्वी पर संख्या बढ़ती चली गई, कोई उपाय काम न आया... । और अभी जो हम उपाय कर रहे हैं उनसे कोई आशा नहीं बंधती। वे बहुत ही कमजोर उपाय हैं। वे ऐसे हैं जैसे कोई समुद्र को खाली कर रहा हो छोटे से बर्तन में भर-भर कर; गिलास में भर-भर कर खाली कर रहा हो। मामला बहुत बड़ा है और सरकारें जो भी कर रही हैं वह बहुत छोटा है। उससे कुछ हल होने वाला नहीं है; बहुत कठिनाई है, उससे कुछ हल होने वाला नहीं है। क्योंकि वह जो हम हल करते हैं वह इतना छोटा है! और जब तक हम हल कर पाते हैं, दस-पांच लाख लोगों को पैदा होने से रोकते हैं, तब तक करोड़ लोग पैदा हो चुके होते हैं। वह इतने विस्तार पर प्रश्न है।

इसके पहले कि दुनिया समाप्त हो भीड़ से, भीड़ पागल होगी। पागल होना शुरू हो गई है। आज ठीक-ठीक मानसिक रूप से स्वस्थ आदमी का सर्टिफिकेट किसी को भी देना मुश्किल है। ज्यादा से ज्यादा इतना ही कह सकते हैं कि यह आदमी अभी पागल नहीं हुआ है, यह नहीं कह सकते कि यह आदमी ठीक है। डिग्री का फर्क रह गया है पागल में और सब में। क्वांटिटी का फर्क है, क्वालिटी का नहीं है। ऐसा ही है कि कोई निन्यानबे डिग्री

पर उबल रहा है, कोई अट्ठानबे डिग्री पर उबल रहा है, कोई पंचानबे डिग्री पर उबल रहा है, कोई सौ डिग्री पर जाकर छलांग लगा गया है और पागलखाने के भीतर है! आप निन्यानबे डिग्री पर हैं तो आप कह रहे हैं, बेचारा! और आपको पता नहीं कि निन्यानबे डिग्री किसी भी समय सौ डिग्री हो सकती है।

विलियम जेम्स अपनी जिंदगी में एक दफा पागलखाना देखने गया, फिर दोबारा गया नहीं। क्योंकि पागलखाने में देख कर उस बुद्धिमान आदमी को जो ख्याल आया वह यह था कि ये सारे लोग पागल हो गए हैं। उसमें उसका कोई परिचित मित्र भी था जो कल तक बिल्कुल ठीक था। लौट कर घर वह बिस्तर पर लग गया और उसने अपनी पत्नी से कहा कि अब मैं बहुत डर गया हूं। उसकी पत्नी ने कहाः क्या हो गया है तुम्हें?

उसने कहा कि कल तक जो ठीक था, वह आज पागल हो गया है; मैं आज तक ठीक हूं, कल का क्या भरोसा है! और अपने को मैं यह नहीं समझा सकता कि वह बेचारा पागल हो गया है; क्योंकि कल तक वह भी अपने को समझाता रहा था कि कोई दूसरा बेचारा पागल हो गया है। नहीं, मैं डर गया हूं क्योंकि मेरे भीतर वह सब मौजूद मुझे मालूम पड़ता है जिसका विस्फोट हो जाए तो मैं पागल हो जाऊंगा।

हम सबके भीतर वह मौजूद है। कभी एकांत कोने में चले जाएं कमरे के, घर के द्वार बंद कर लें। कागज पर जो भी मन में चलता हो लिख डालें दस मिनट ईमानदारी से। किसी को बताना नहीं है, नहीं तो ईमानदारी न बरत पाएंगे। वह दूसरा आया कि आप बेईमान हुए। वह चाहे दूसरा आपकी पत्नी ही क्यों न हो, आपका बेटा ही क्यों न हो। दूसरे के सामने ईमानदार होना बहुत कठिन परीक्षा है। अपने ही सामने ईमानदार होना बहुत कठिन मामला है। दस मिनट दरवाजे पर ताला लगा लेना और लिखना जो भी मन में चल रहा हो दस मिनट; जो भी, उसमें कुछ हेर-फेर मत करना। तो दस मिनट के बाद उस कागज को आप किसी को दिखा न सकेंगे। और अगर दिखाएंगे तो कोई भी कहेगा, किस पागल ने लिखी हैं ये बातें? ये किसके दिमाग से निकली हैं? और आप खुद ही हैरान होंगे कि यह सब मेरे भीतर चल रहा है!

चारों तरफ तनाव घिर गया है। इस तनाव के बहुत परिणाम हैं। पहला परिणाम तो यह हुआ है कि सब तरफ कलह है, विग्रह है, कांफ्लिक्ट है। वर्ग के नाम से, धर्म के नाम से, संप्रदाय के, जाति के, भाषा के-इस सबके बहुत गहरे में मानसिक कलह हमारे भीतर है। वह फैल रही है, और वह बढ़ती जाएगी। संख्या बढ़ेगी, और वह बढ़ेगी, क्योंकि आदमी को भी जीने के लिए जगह चाहिए। वह जीने की जगह उसकी छिन गई है। हमने मौत रोक दी और जन्म को रोकने को हम तैयार नहीं हैं।

यह जो, यह जो कलह है, यह रोज युद्धों की शक्ल में भभकेगी, फूटेगी। हमने अगर हाइड्रोजन और एटम बना लिया है तो आकस्मिक नहीं है यह। असल में इस जगत में कुछ भी आकस्मिक नहीं होता। और इस जगत में जो होता है उसके भीतर बहुत गहरे नियम काम करते हैं।

जैसे, उदाहरण के लिए... । अब यह बड़े मजे की बात है न कि दुनिया में स्त्री-पुरुषों की संख्या करीब-करीब बराबर रहती है। यह बड़े मजे की बात है! इसमें कौन इंतजाम कर रहा है! इतनी बड़ी दुनिया है, इसमें कभी ऐसा नहीं हो जाता कि एकदम पुरुष ही पुरुष बहुत हो जाएं या स्त्रियां ही स्त्रियां बहुत हो जाएं। एक सौ सोलह लड़के पैदा होते हैं और सौ लड़कियां पैदा होती हैं। और एक सौ सोलह लड़के भी बड़ी व्यवस्था से पैदा होते हैं, क्योंकि सेक्सुअली मैच्योर होने के पहले तक सोलह लड़के मर जाते हैं और संख्या बराबर हो जाती है।

असल में लड़का कमजोर है लड़की से। लड़की का रेसिस्टेंस ज्यादा है। औरतों की प्रतिरोधक शक्ति ज्यादा है। वे बीमारी को ज्यादा झेल सकती हैं, कष्ट को ज्यादा झेल सकती हैं, परेशानी को ज्यादा झेल सकती हैं और टूटने से बच सकती हैं। पुरुष की क्षमता रेसिस्टेंस की कम है। इसलिए प्रकृति एक सौ सोलह लड़के पैदा करती है

और सौ लड़कियां पैदा करती है। लड़कियां बच जाती हैं, सोलह लड़के इस बीच डूब जाते हैं, संख्या चौदह-पंद्रह वर्ष की उम्र होते-होते तक बराबर हो जाती है।

यह बड़ी हैरानी की बात है कि कोई इनर सूत्र काम करते हैं जिंदगी में। आदमी ने उन भीतरी सूत्रों पर कई तरफ से हमला कर दिया है और इसलिए बहुत इनर बैलेंस को बिगाड़ दिया है। तो हमने मृत्यु पर तो हमला बोल दिया--बीमारी नहीं होने देंगे, प्लेग नहीं होने देंगे, महामारी नहीं आने देंगे, मलेरिया नहीं होने देंगे, मच्छर को नहीं बचने देंगे--हमने सब इंतजाम कर दिया है उधर से; मरने की तरफ हमला बोल दिया है। इधर जन्म की तरफ से जो धारा चल रही है वह धारा उसी हिसाब से चल रही है जिस हिसाब से मलेरिया का मच्छर होता तब चलनी चाहिए थी; प्लेग होती, महामारी होती, तब चलनी चाहिए थी; काला ज्वर होता, तब चलनी चाहिए थी।

वह प्रकृति अपने ही अनुशासन से काम करती है। वह अनुशासन उसका चल रहा है भीतर। वह अनुशासन भीतर चल रहा है और हमने अनुशासन का एक छोर बदल दिया है। इसलिए मैं संतति-नियमन के अत्यंत पक्ष में हूं। दूसरा छोर हमें बदलना पड़ेगा। मौत को अगर हमने छुआ है तो जन्म को छूना पड़ेगा। अब जन्म को प्रकृति के अंधे हाथों में नहीं छोड़ा जा सकता। लेकिन इस संबंध में भी कुछ बातें मैं कहना चाहूंगा।

मेरे लिए यह सवाल भोजन, कपड़े-लत्ते का कम, मेरे लिए यह सवाल मनुष्य के आधुनिक विकास का ज्यादा है। मेरे लिए सवाल यह है कि अगर पूरी मनुष्यता को पागल होने से बचाना है तो संतति पर नियमन करना पड़ेगा, परिवार नियोजन को गति देनी पड़ेगी। और गति जैसी हम दे रहे हैं वैसी नहीं चलेगी, क्योंकि उसके भी खतरनाक परिणाम हो सकते हैं जो हम कर रहे हैं अभी।

इसके पहले कि मैं उस संबंध में कुछ कहूं, मैं आपसे यह भी कह दूं कि जैसे मैंने कहा कि प्रकृति का एक भीतरी इंतजाम चलता है, वह अंधा है। तो जब भी हम इस तरह की स्थिति पैदा कर लेते हैं तब फिर उस स्थिति को मिटाने के लिए भीतरी बैलेंस की शक्तियों को काम में लग जाना पड़ता है। इसलिए एक तरफ हम मौत को धक्का देकर हटा दिए और दूसरी तरफ सामूहिक मौत को निमंत्रण देकर बुला रहे हैं। वह तीसरा महायुद्ध सामने खड़ा है। मुझे लगता है कि अगर संख्या बढ़ती गई तो तीसरे महायुद्ध को रोका नहीं जा सकता। अगर तीसरा महायुद्ध रोकना हो तो संख्या दुनिया की एकदम नीचे गिरानी जरूरी है। नहीं तो तीसरा महायुद्ध होगा। और तीसरा महायुद्ध साधारण युद्ध नहीं, जैसे पहले हुए। तीसरा महायुद्ध अंतिम युद्ध है।

आइंस्टीन से मरने के पहले किसी ने पूछा था कि तीसरे महायुद्ध के संबंध में कुछ बताएं। आइंस्टीन ने कहा कि तीसरे के बाबत कुछ नहीं बताया जा सकता, लेकिन चौथे के संबंध में कुछ पूछते हो तो मैं बता सकता हूं। उस आदमी ने कहाः तीसरे के बाबत नहीं बता सकते तो चौथे के बाबत? आइंस्टीन ने कहाः चौथे के बाबत एक बात निश्चित है कि चौथा कभी नहीं होगा! क्योंकि तीसरे के बाद आदमी के बचने की उम्मीद ही नहीं तो चौथा युद्ध करेगा कौन? इसलिए चौथे के बाबत निश्चित वक्तव्य उसने दिया है कि चौथे के बाबत एक बात निश्चित है।

लेकिन तीसरे में सबके विनाश की संभावना बढ़ती चली जाती है। इधर आदमी पागल हो रहा है, इधर उसके तनाव बढ़ रहे हैं, इधर वह मरने-मारने को, दूसरे को मिटाने को नये-नये सिद्धांत खोज रहा है। कभी फासिज्म, कभी कम्युनिज्म, कभी कुछ, कभी कुछ--दूसरे को कैसे मारो-काटो? और अच्छे सिद्धांतों की आड़ में काटना आसान हो जाता है। इसलिए दुनिया में जो बहुत अदभुत किस्म के पागल हैं वे हमेशा आइडियालॉजिस्ट पागल होते हैं। साधारण पागल तो पागलखानों में बंद है। असाधारण पागल कभी स्टैलिन हो जाता है, कभी

हिटलर हो जाता है, कभी माओ हो जाता है--वह ऊपर छाती पर बैठ जाता है, सिद्धांत पकड़ लेता है। और सिद्धांत की आड़ में जब वह पागलपन का खेल करता है तो हिसाब लगाना मुश्किल हो जाता है कि वह क्या कर रहा है।

हिटलर ने, अकेले हिटलर ने कोई साठ लाख लोगों की हत्या की जर्मनी में। अकेले स्टैलिन ने कोई अंदाजन करोड़ लोगों की हत्या की रूस में। लेकिन कोई हत्यारा न कहेगा स्टैलिन को। यह मजा है सिद्धांत के साथ। यह मजा है सिद्धांत के साथ। करोड़ आदमियों को मारने वाला हत्यारा नहीं है, और आप एक आदमी को मार दें तो आप हत्यारे हैं! लेकिन वह करोड़ आदमियों को सिद्धांत से मार रहा है। उनके ही हित में उनको ही मार रहा है। वह कहता है, हम तुम्हारी ही सेवा कर रहे हैं। सिद्धांत का बड़ा पुख्ता, फिर सब ठीक हो जाता है। फिर मारा जा सकता है।

तीसरा महायुद्ध अनिवार्य हो जाएगा अगर संख्या नहीं रुकती है दस सालों में। तो उन्नीस सौ अस्सी के बाद पार होना बहुत मुश्किल है। तीसरा महायुद्ध अनिवार्य हो जाएगा, वही उपाय रहेगा इनर बैलेंस का। लेकिन वह बैलेंस बड़ा महंगा पड़ने वाला है। उसमें सब मिट जाने की संभावना है। और इसीलिए मैं एक और आपको सूचना दूं कि मेरी नजर में चांद पर जाने की जो इतनी तीव्र आकांक्षा मनुष्य को पैदा हुई है उसका आज कोई कारण नहीं है आज। लेकिन उसके कारण को अगर हम गहरे मनुष्य की चेतना में खोजने जाएं तो मुझे वह इनर बैलेंस फिर वापस ख्याल में आता है। अब पृथ्वी शायद आने वाले पचास वर्षों में रहने योग्य जगह न रह जाएगी। आदमी को हमें किसी दूसरे ग्रह पर बचाने का उपाय करना पड़ेगा।

पुरानी कहानी आपने सुनी होगी ईसाइयों की, नोह की। महाप्रलय हुई और सारे लोग मर गए। और परमात्मा ने नोह से कहा कि यह नाव तू सम्हाल और एक-एक प्राणी-जाति के एक-एक जोड़े को इसमें बचा ले। और यह नाव को ले जा उस जगह जहां कि प्रलय नहीं है; वहां इतने लोगों को बचा ले ताकि फिर से सृष्टि हो सके।

नोह की कहानी सच है या झूठ, कहना मुश्किल है। वैसे झूठ कहना बहुत मुश्किल है, क्योंकि नोह की कहानी दुनिया की समस्त जातियों में अलग-अलग रूपों में प्रचलित है। जब दुनिया इकट्ठी नहीं थी और कोई एक-दूसरे को नहीं जानता था तब भी वह कहानी प्रचलित है, महाप्रलय की, कि कभी महाप्रलय हुई, जब सब डूब गया और सिर्फ स्पेसिमेन बचाए जा सके। एक आदमी, एक औरत; एक गधा, एक गधी; एक बंदर, एक बंदरिया; इस तरह स्पेसिमेन बचा कर फिर सब कार्य शुरू करना पड़ा।

इसकी संभावना बढ़ती जाती है कि अगर तीसरा महायुद्ध पृथ्वी पर होता है तो पृथ्वी पर बचने का तो कोई उपाय नहीं होगा; कुछ लोगों को पृथ्वी के बाहर ले जाना पड़ेगा। मगर यह सब जरूरी नहीं है, यह सब रोका जा सकता है। रोकने का क्रम वहां है जहां संतति हम पैदा कर रहे हैं।

लेकिन हम वैकल्पिक रूप से रोक रहे हैं। हम वॉलंटरिली रोकने के लिए लोगों से कह रहे हैं-समझा रहे हैं, स्वेच्छा से समझ जाओ।

नहीं, स्वेच्छा से समझने का मामला नहीं है यह; यह कम्पलसरी हो तो ही संभव हो सकता है। अनिवार्य हो! वैकल्पिक नहीं, ऐच्छिक नहीं, ऐसा नहीं कि हम आपको समझा रहे हैं कि आप दो या तीन बच्चे... या भी लगाने से खतरा है। या बिल्कुल नहीं चाहिए बीच में; क्योंकि या का कोई अंत नहीं है। दो बच्चे यानी दो बच्चे। तीसरा बच्चा यानी नहीं। और यह "नहीं" आपकी इच्छा पर छोड़ी गई तो हल होने वाला नहीं है; क्योंकि आदमी की चेतना इतनी कम है कि उसे पता ही नहीं है कि कितनी बड़ी समस्या है। यह उस पर नहीं छोड़ा जा सकता

है। यह अनिवार्य करना होगा। इसे इतनी बड़ी अनिवार्यता देनी होगी जैसे इमरजेंसी की अनिवार्यता होती है। इससे बड़ी कोई इमरजेंसी नहीं है। और वैकल्पिक, स्वेच्छा से, वॉलंटरिली जो हम करवा रहे हैं उसका नुकसान भी बहुत है, उसका नुकसान बहुत गहरा है।

बड़ा मजा यह है कि जब हम स्वेच्छा से लोगों को समझाते हैं तो जो समझदार वर्ग है वह समझ जाता है और जो नासमझ वर्ग है वह नहीं समझता। तो समझदार वर्ग अपने बच्चे कम कर लेगा और नासमझदार वर्ग अपने बच्चे बढ़ा लेगा। तो उसका बैलेंस मेरिट का और बुद्धि का... भयंकर नुकसान होगा।

आमतौर से वैसे भी समझदार आदमी जिम्मेवार नहीं है बच्चे बढ़ाने में। आमतौर से जो सुशिक्षित है, सोच-विचार वाला है, और जिसको थोड़ी भी बुद्धि है, वह दुनिया की फिकर भले न करता हो, लेकिन उसे घर में एक रेडियो चाहिए, रेडियोग्राम चाहिए, या टी. वी. चाहिए या एक कार चाहिए, तो उसे बच्चे रोकने पड़ते हैं। तो जो थोड़ा सा भी सोच-विचार करता है अपना ही सिर्फ, वह बच्चे नहीं बढ़ाता।

इसलिए फ्रांस अकेला मुल्क है जहां जनसंख्या गिर रही है। मैं मानता हूं कि वह सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता का सबूत दिया है। अकेला मुल्क है जहां जनसंख्या गिर रही है, जहां की सरकार पोस्टर लगाती है कि भई जनसंख्या थोड़ी बढ़ाओ। क्योंकि डर यह है कि दूसरों की संख्या बहुत हो जाए और फ्रांस की संख्या कम हो जाए, तो फ्रांस में स्पेस बन जाए तो चारों तरफ से लोग भीतर प्रवेश कर जाएंगे, फ्रांस रोक नहीं सकेगा।

बुद्धिमान मुल्कों की संख्या ठहर गई है। स्वीडन हो या स्विट्जरलैंड हो, नार्वे हो या बेल्जियम हो, ठहर गई है। यूरोप की संख्या ठहरने के करीब पहुंच गई है। एशिया विक्षिप्त हुआ जा रहा है। इसलिए पश्चिम को सबसे बड़ा खतरा है। आपके लिए वे अगर बर्थ कंट्रोल के साधन मुफ्त भेज रहे हैं तो ऐसा मत सोचना कि सिर्फ परोपकार है।

पश्चिम के लिए सबसे बड़ा खतरा है कि एशिया उसको डुबा देगा कीड़े-मकोड़ों की तरह। सबसे बड़ा खतरा है इस वक्त पश्चिम को। एक तो उसने संपन्नता पा ली है, समृद्धि पा ली है, सभ्यता पा ली है। हजारों-हजारों साल के मनुष्य के सपने आज जब पूरे होने के करीब आए हैं, पूरे, तब एशिया इतने बच्चे पैदा कर रहा है कि वे सारी दुनिया को दबा डालेंगे।

ये बैरियर ज्यादा दिन तक काम नहीं करेंगे राष्ट्रों की सीमाओं के। और न वीसा और पासपोर्ट ज्यादा दिन रोकेंगे। संख्या जैसे ही सीमा के बाहर होगी, कोई नियम काम नहीं करेगा। लोग एक-दूसरे मुल्कों में प्रवेश कर जाएंगे और जहां जगह होगी वहां हावी हो जाएंगे। क्योंकि मरता क्या न करता! अगर मरने के लिए, अगर मरना ही है तो फिर कोई पुलिस नहीं रोक सकती; कोई बैरियर नहीं रोक सकता।

एशिया सबसे बड़ा खतरा हो गया है सारे जगत के लिए। इसलिए सारा जगत चिंतित है, सहायता पहुंचाता है। बर्थ-कंट्रोल की एड्स लो, पिल्स लो, सारा इंतजाम करो, हम तैयार हैं आपकी सेवा में, लेकिन कृपा करके आप बच्चे पैदा मत करो। आप अपने लिए तो खतरा हो ही, आप सारी दुनिया की सुविधा के लिए भी खतरा हो।

लेकिन अगर इसे हमने स्वेच्छा पर छोड़ा तो हम नुकसान में पड़ेंगे। समझदार आदमी बच्चे पैदा करता ही नहीं, कम करता है। आमतौर से समझदार आदमी बच्चे कम पैदा करता है। अगर समझदार ही लोग हों तो संख्या थोड़ी कम होगी हर पीढ़ी के बाद। लेकिन गैर-समझदार बच्चे बहुत जोर से पैदा करता है। वह समझ लेना जरूरी है कि वह क्यों करता है। गैर-समझदार बच्चे इतने ज्यादा क्यों पैदा करता है? एक मजदूर या एक किसान इतने बच्चे क्यों पैदा करता है?

इसके दो कारण हैं। एक तो समझदार आदमी सेक्स के अतिरिक्त कुछ और सुख भी खोज लेता है जो गैर-समझदार नहीं खोज पाता। संगीत है, साहित्य है, धर्म है, ध्यान है--कुछ और रास्ते भी खोज लेता है जहां से उसे आनंद मिल सकता है। वह जो गैर-समझदार है उसके लिए आनंद सिर्फ एक है, वह सेक्स से संबंधित है। वह आनंद और कहीं भी नहीं है। न वह रात एक उपन्यास पढ़ कर बिता सकता है कि इतना डूब जाए कि पत्नी को भूल सके, न वह एक दिन ध्यान में प्रवेश कर पाता है, न बांसुरी में उसे कोई रस है। नहीं, उसका, उसका चित्त उस जगह नहीं आया जहां कि आदमी यौन के ऊपर सुख खोज लेता है।

जितने आदमी यौन के ऊपर सुख खोज लेते हैं उनकी यौन की भूख निरंतर कम होती चली जाती है। अगर वैज्ञानिक अविवाहित रह जाते हैं तो कोई ब्रह्मचर्य साधने के कारण नहीं। या संत अविवाहित रह जाते हैं तो कोई ब्रह्मचर्य साधने की वजह से नहीं। कुल कारण इतना है कि उनके जीवन में आनंद के नये द्वार खुल जाते हैं। वे इतने बड़े आनंद में होने लगते हैं कि यौन का आनंद अर्थहीन हो जाता है।

गरीब के पास, अशिक्षित के पास, ग्रामीण के पास, श्रमिक के पास और कोई मनोरंजन नहीं है। इसलिए जिन मुल्कों में मनोरंजन की जितनी कमी है उन मुल्कों में संख्या उतनी तेजी से बढ़ेगी। उसके पास एक ही मनोरंजन है; वह जो प्रकृति ने उसे दिया है। मनुष्य-निर्मित कोई मनोरंजन उसके पास नहीं है। लेकिन यह सुनेगा नहीं, क्योंकि यह सुनने की स्थिति में भी नहीं है। यह बच्चे पैदा करता चला जाएगा। और समझदार वर्ग सुन लेगा और चुप हो जाएगा, बच्चे पैदा नहीं करेगा। तो वैसे ही जिन मुल्कों की प्रतिभा कम है वह और कम हो जाएगी। सौंदर्य कम हो जाएगा, स्वास्थ्य कम हो जाएगा, प्रतिभा कम हो जाएगी।

इसलिए मैं वॉलंटरिली बर्थ-कंट्रोल के सख्त खिलाफ हूं। बर्थ-कंट्रोल के पक्ष में हूं, संतति-नियमन के सख्त पक्ष में हूं, लेकिन स्वेच्छा से संतति-नियमन के सख्त खिलाफ हूं। संतति-नियमन चाहिए अनिवार्य, कम्पलसरी, तो ही अर्थपूर्ण हो सकता है। और तब मुल्क की प्रतिभा को गति दी जा सकती है। और इसके लिए कितने और पैमाने उपयोग करने चाहिए वह मैं दो-चार बातें करूं।

एक तो मेरी दृष्टि में संतति-नियमन और बहुत से इंप्लीकेशंस लिए हुए हैं, और बहुत अंतर्गर्भित संबंध हैं उसके। असल में गरीब आदमी ज्यादा बच्चे पैदा करने में उत्सुक होता है, क्योंकि गरीब आदमी के लिए ज्यादा बच्चे मुसीबत नहीं लाते, सुविधा लाते हैं। अमीर आदमी ज्यादा बच्चे पैदा करने में उत्सुक नहीं रहता, क्योंकि ज्यादा बच्चे उसे सुविधा नहीं लाते, असुविधा लाते हैं। अगर मेरे पास लाख रुपए हैं और मैं दस बच्चों को पैदा करूं तो दस-दस हजार बंट जाएंगे, मैं लखपति न रह जाऊंगा। लेकिन अगर मेरे पास कुछ भी नहीं है और मैं दस बच्चे पैदा करूं, तो दस बच्चे आठ-आठ आने लाकर कम से कम सांझ मुझे दे देंगे।

तो जब तक हम गरीब को, वह जो नीचे बड़ा वृहत जनसमूह है, उसको भी ऐसी व्यवस्था न दे सकें कि बच्चे बढ़ना उसके लिए असुविधा का कारण हो जाए, तब तक वह सुनने वाला नहीं है। लेकिन अभी हमारी बड़ी अजीब स्थिति है। यह हमारा मुल्क तो कंट्राडिक्शंस का... कोई हिसाब ही नहीं है हमारे मुल्क के विरोधाभासों का। इधर हम सारे मुल्क को समझाते हैं कि बच्चे कम पैदा करो, उधर जिसके बच्चे ज्यादा हैं उस पर टैक्स कम लगाते हैं, जिसके बच्चे कम हैं उस पर टैक्स ज्यादा लगाते हैं। इधर समझाते हैं बच्चे नहीं, उधर अविवाहित पर ज्यादा टैक्स लगाते हैं, विवाहित पर कम टैक्स लगाते हैं।

पागलपन की दुनिया हो सकती है कोई तो इस मुल्क में है। अगर बच्चे पैदा करने कम करने हैं तो विवाहित पर ज्यादा टैक्स लगाना पड़ेगा और अविवाहित को सुविधाएं देनी पड़ेंगी कि वह ज्यादा देर तक अविवाहित रह जाए। ज्यादा बच्चों पर ज्यादा टैक्स लगाना पड़ेगा। बहुत उलटा मालूम पड़ेगा, क्योंकि हम

सोचते हैं कि ज्यादा बच्चे हैं बेचारे को सहायता पहुंचाओ। ज्यादा बच्चों पर टैक्स ज्यादा लगाना पड़ेगा। हर नया बच्चा ज्यादा टैक्स घर में लाए तो बच्चे को लाने का डर शुरू होगा। लेकिन हर बच्चा घर में टैक्स कम करे तो लाना अच्छा ही है।

इस वक्त जिनके घर में ज्यादा बच्चे हैं वे बड़े फायदे में हैं, वे पार्टनरशिप बना लेते हैं सबकी। टैक्स कम कर लेते हैं। एक ओर हम चाहते हैं बच्चे कम हो जाएं और दूसरी ओर जो भी हम कर रहे हैं वे पचास साल पुराने नियम हैं जब कि ज्यादा होने में कोई खतरा न था।

तो संतति-नियमन अनिवार्य चाहिए। और जीवन के सब पहलुओं पर ध्यान देना चाहिए कि कहां-कहां बच्चों को रोकने में क्या-क्या करना पड़ेगा। वहां सारी फिकर कर लेनी चाहिए।

दूसरी बातः यह हमारा अब तक का जो जगत था, और अब जो नहीं हो सकेगा, उस जगत से बहुत-सी नैतिकताएं और बहुत से सिद्धांत हम लेकर आए हैं, जो कि होने वाले जगत में बाधा बनेंगे, उन्हें हमें तोड़ना पड़ेगा। उनके साथ तालमेल नहीं हो सकता।

अब जैसे गांधी जी खिलाफ थे संतति-नियमन के और उन्होंने जिंदगी में जितनी गलत बातें कही हैं उसमें यह सबसे ज्यादा गलत बात है। वे संतति-नियमन के खिलाफ थे। वे कहते थे, बर्थ-कंट्रोल से अनीति बढ़ जाएगी। उनको इसकी फिकर नहीं है कि बर्थ-कंट्रोल नहीं हुआ तो मनुष्यता मर जाएगी, उनको फिकर इसकी है कि बर्थ-कंट्रोल से कहीं अनीति न बढ़ जाए। कहीं ऐसा न हो कि कोई कुवांरी लड़की किसी लड़के से संबंध रखे और पता न चल पाए।

पता चलाने की किसी को जरूरत क्या है? यह पीपिंग टाम की प्रवृत्ति बड़ी खतरनाक है। पता चलाने की जरूरत क्या है? यह अनैतिक है यह पता चलाने की इच्छा ही। पड़ोस की लड़की का किस से क्या संबंध है, अगर कोई आदमी उसमें उत्सुक होकर पता लगाता फिर रहा है तो यह आदमी अनैतिक है। यह अनैतिक इसलिए है कि यह दूसरे आदमी की जिंदगी में तनाव पैदा करने की कोशिश में लगा है। इसे प्रयोजन क्या है?

लेकिन पुराना सब नीतिवादी इसमें उत्सुक था कि कौन क्या कर रहा है। वह सबके घरों के आस-पास घूमता रहता है। पुराना महात्मा जो है वह हर आदमी का पता लगाता फिरता है कि कौन क्या कर रहा है। मनुष्यता मर जाए, इसकी फिकर नहीं, महात्मा को इस बात की फिकर है कि कहीं कोई अनीति न हो जाए। हालांकि महात्मा की फिकर से अनीति रुकी नहीं है। गांधी जी के आश्रम में भी वही होता जो कहीं भी हो रहा है, होता था; होगा ही। ठीक गांधीजी की आंख के नीचे वही होगा; उसमें कुछ फर्क पड़ने वाला नहीं है। क्योंकि जिसे हम अनीति कह रहे हैं अगर वह स्वभाव के विपरीत है तो स्वभाव बचेगा और अनीति नहीं बचेगी।

और अनीति क्या है? कभी हमने नहीं सोचा कि एक स्त्री को दस बच्चे पैदा होते हैं तो उसकी पूरी जिंदगी बरबाद हो जाती है। इसको हमने अनीति नहीं माना। हमने तो कहा कि स्त्री का तो काम ही मां होना है। मां होने का मतलब हमने समझा है कि मां होने की फैक्ट्री होना है। तो उससे फैक्ट्री का काम हमने लिया है। अगर हम पुरानी स्त्री की आज से चालीस साल पहले की, और आज भी गांवों में स्त्री की जिंदगी एक फैक्ट्री की जिंदगी है, जो हर साल एक बच्चा दे जाती है और फिर दूसरे बच्चे की तैयारी में लग जाती है।

जो हम मुर्गी के साथ कर रहे हैं वह हम स्त्री के साथ भी किए हैं। लेकिन यह अनीति नहीं थी। एक आदमी अगर बीस बच्चे अपनी पत्नी से पैदा करे तो दुनिया का कोई भी ग्रंथ और कोई भी महात्मा नहीं कहता कि यह आदमी अनैतिक है।

यह आदमी अनैतिक है। इसने एक स्त्री की हत्या कर दी। उसके व्यक्तित्व में कुछ न बचा, वह सिर्फ एक फैक्ट्री रह गई। लेकिन यह अनैतिक नहीं है। यह अनैतिक नहीं है। अनैतिक हम न मालूम क्या, किस चीज को बनाए हुए हैं। और वे समझाएंगे--गांधीजी, विनोबाजी--वे कहेंगे कि नहीं, ब्रह्मचर्य साधो।

अब ये पांच हजार साल से ब्रह्मचर्य की शिक्षा दे रहे हैं और इनके ब्रह्मचर्य की शिक्षा वे अभी भी दिए जाते हैं। वे कहते हैं, संतति-नियमन नहीं; हां, ब्रह्मचर्य साधो। और वह ब्रह्मचर्य कोई एकाध साधता हो, साध लेता हो, तो भी वह कोई मेजर नहीं है, उससे कुछ होने वाला नहीं है। यह प्रश्न इतना बड़ा है! यह प्रश्न इतना बड़ा है कि इस प्रश्न को ब्रह्मचर्य से हल नहीं किया जा सकता। पांच हजार साल सबूत हैं, गवाह हैं, कि पांच हजार साल से शिक्षक समझा-समझा कर मर गए, कितने ब्रह्मचारी तुम पैदा कर पाए हो? गांधी जी भी चालीस-पचास साल मेहनत किए, कितने ब्रह्मचारी पैदा कर गए हैं? सच तो यह है कि खुद के ब्रह्मचर्य पर भी उन्हें कभी भरोसा नहीं था, आखिरी वक्त तक भरोसा नहीं था। कहते थे, जागते में तो मेरा काबू हो गया है, लेकिन नींद में लौट आता है।

लौट ही आएगा। जागने में जो काबू करेगा उसका लौटेगा ही। उसमें और कोई कसूर नहीं है। कसूर खुद का है। दिन भर सम्हाले हैं तो नींद में सम्हालना शिथिल हो जाता है। तो नींद में, जो दिन भर नहीं किया है, वह नींद में करना पड़ता है। और नींद में करने से दिन में करना बेहतर है, कम से कम नींद तो खराब नहीं होती।

ब्रह्मचर्य से चाहते हैं कि संख्या का अवरोध हो जाएगा--नहीं होगा। साधु-संत यह भी समझा रहे हैं कि तुम हकदार नहीं हो, परमात्मा बच्चे भेजता है तुम रोकने के हकदार नहीं हो। और यही साधु-संत अस्पताल चलाते हैं! परमात्मा बीमारी भेजता है, उसको क्यों रोकते हैं? और परमात्मा मौत भेजता है तो अस्पताल क्यों भागते हैं?

अभी मैं आज रास्ते से निकल रहा था तो एक अस्पताल देखा, आयुर्वेदिक, कोई स्वामी का नाम लिखा है, फलां-फलां स्वामी आयुर्वेदिक हॉस्पिटल। तो स्वामी अस्पताल किसलिए खोल रहा है--आयुर्वेदिक ढंग से मरने के लिए लोगों को?

मरने के ढंग भी होते हैं। कोई एलोपैथिक ढंग से मरता है, कोई आयुर्वेदिक ढंग से, कोई होमियोपैथिक ढंग से ही मरने के शौकीन होते हैं! इसलिए खोला है यह अस्पताल?

निश्चित ही, बचाने के लिए खोला होगा लोगों को। तो अगर बच्चे परमात्मा भेज रहा है तो मौत कौन भेज रहा है? तो मौत से लड़ने को वैज्ञानिक हैं और बच्चे पैदा करवाने के लिए महात्मा आशीर्वाद देते रहेंगे।

ये सब क्रिमिनल्स हैं जो इस तरह की बातें कर रहे हैं। अगर जन्म पर रोक लगाने में परमात्मा का विरोध है तो फिर सब अस्पताल बंद, फिर मौत पर भी रोक नहीं लगानी चाहिए। तो फिर बैलेंस अपने आप हो जाएगा। फिर कोई तकलीफ न होगी।

लेकिन बड़ा आश्चर्य है। इसलिए मैं कह रहा हूं, हमारा मुल्क बड़े कंट्राडिक्शंस में जीता है।

नहीं, जो मौत के साथ किया है वह जन्म के साथ करना पड़ेगा; और नहीं करना है तो दोनों के साथ मत करो। फिर मच्छर पलने दो, मलेरिया फैलने दो, प्लेग... फिर सब ठीक हो जाएगा। फिर कोई बर्थ-कंट्रोल की जरूरत नहीं पड़ेगी। लेकिन उसकी जरूरत इसलिए पड़ी कि प्रकृति तो अपना इंतजाम कर लेती थी, आदमी ने एक कोने से रुकावट डाल दी। अब दूसरे कोने पर रुकावट डालते हैं तो वे कहते हैं परमात्मा आड़े आता है।

परमात्मा बिल्कुल आड़े नहीं आता, लेकिन महात्मा सदा परमात्मा के नाम से जिंदगी की जरूरी चीजों में बहुत आड़े आते रहे हैं। उनका बल जरूर है। उनका बल है, अंधे आदमी को उनका बल स्वाभाविक है। और जब

वह अंधा बल अंधे आदमी की, उसकी ही मनोवृत्ति को सहयोग देता है तब तो बहुत सहारा मिल जाता है। तब वह कहता है, बिल्कुल ठीक है, हम बच्चे रोकने वाले कौन हैं!

मुझे एक छोटी सी कहानी याद आती है वह मैं कहूं और बात पूरी करूं।

बंगाली में एक उपन्यास है। उस उपन्यास में एक परिवार बद्री-केदार की यात्रा को गया है। बंगाली गृहिणी, उसका परिवार है। बंगाली गृहिणी भक्त है, एक संन्यासी भी रास्ते में साथ हो लिया है। बंगाली गृहिणी खाना बनाती है तो पहले संन्यासी को खिलाती है फिर पति को। स्वभावतः, मेहमान भी है संन्यासी भी है। और जो-जो अच्छा है पहले संन्यासी को, रास्ते का मामला है। संन्यासी इतना खा जाता है कि बाकी के लिए फिर समझो बचा-खुचा ही रह जाता है। पति बहुत परेशान है।

असल में पति और पत्नी के बीच अगर संन्यासी खड़ा हो जाए तो पति सदा ही परेशान हो जाता है। उसकी समझ में भी नहीं पड़ता कि क्या हो रहा है और पत्नी की दहशत की वजह से कह भी नहीं सकता कि क्या हो रहा है। सब मंदिर पति चला रहे हैं, वाया पत्नी। सब साधु-संत पति पाल रहे हैं, वाया पत्नी। पत्नी वहां जा रही है तो वह सब पल रहा है।

तो वह संन्यासी सब खा जाता है। फिर पीछे से कोई यात्री आया है और "संदेश" लाया है, बंगाली मिठाई लाया है। पति बहुत डरा हुआ है, वह बड़ा शौकीन है संदेश का। वह कहता है कि बचेगी थोड़े ही, वह तो संन्यासी सब पहले ही साफ कर जाएगा। दूसरे दिन वह बड़ा भयभीत है। संदेश रखे गए, संन्यासी सब साफ कर गया। उसने कहाः रोटी आज रहने दो। वह सब संदेश खा गया। अब पति को इतनी मुश्किल हुई कि एक संदेश भी नहीं बचा। तो उसने संन्यासी से कहाः आप हम पर ख्याल न करें तो कम से कम अपने पर तो ख्याल करें। उस संन्यासी ने कहा कि तू नास्तिक है। अरे जिसने पेट दिया वही ख्याल करेगा, हम परमात्मा के बीच में बाधा नहीं आते। संन्यासी ने कहाः जिसने पेट दिया है वही ख्याल भी करेगा, हम बीच में बाधा डालने वाले कौन?

संदेश संन्यासी डालेगा, बाधा नहीं डालेगा, वह परमात्मा पर छोड़ देगा। आदमी की बेईमानी बहुत पुरानी है। इस मामले में बहुत महंगी पड़ेगी, जनसंख्या के मामले में बहुत महंगी पड़ेगी। साफ समझ लेना जरूरी है कि बच्चे रोकने ही पड़ेंगे अगर पूरी मनुष्यता को बचाना है। अन्यथा आपके बढ़ते बच्चों के साथ पूरी मनुष्यता का अंत हो सकता है।

ये मैंने थोड़ी सी बातें कहीं। यह सवाल तो बहुत बड़ा है और इसके बहुत पहलू हैं। इस पर सोचना। मेरी बात को मान लेने की कोई जरूरत नहीं है। न तो मैं कोई गुरु हूं, न कोई महात्मा हूं और न परमात्मा की तरफ से कोई सर्टिफिकेट लेकर आया हूं कि जो कहता हूं वह सही है। जैसे एक सामान्य आदमी अपनी बात कहता है वैसा आदमी हूं। एक लेमैन, जो निवेदन भर कर सकता है, आग्रह नहीं कर सकता। जो यह नहीं कह सकता कि यही सत्य है, जो इतना ही कह सकता है कि ऐसा मुझे दिखाई पड़ता है।

ये बातें मैंने आपसे कहीं, आप सोचना। शायद कोई बात आपके विचार से ठीक मालूम पड़े तो वह आपकी हो जाएगी। फिर वह मेरी नहीं है, फिर उसमें मेरा कोई जिम्मा नहीं है। वह आपकी और आप जिम्मेवार हैं। और अगर कोई बात ठीक दिखाई न पड़े तो क्षण भर भी मोह मत करना, उसे बिल्कुल फेंक देना। बहुत मोह हो चुका, तो गलत बातों की भीड़ इकट्ठी हो गई है सिर पर, उस कचरे को एकदम फेंक देना है। जो मेरी बात गलत दिखाई पड़े उसे एक मिनट भीतर मत रखना। लेकिन सोच लेना फेंकने के पहले। और अगर सोचने से कुछ ठीक दिखाई पड़ जाए तो वह आपका हो जाएगा।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सातवां प्रवचन

जिज्ञासा, साहस और अभीप्सा

मेरे प्रिय आत्मन्!

अभी-अभी आपकी तरफ आने को घर से निकला। सूर्यमुखी के फूलों को सूर्य की ओर मुंह किए हुए देखा और स्मरण आया कि मनुष्य के जीवन का दुख यही है, मनुष्य की सारी पीड़ा, सारा संताप यही है कि वह अपना सूर्य की ओर मुंह नहीं कर पाता है। हम सारे लोग जीवन भर सत्य की ओर पीठ किए हुए खड़े रहते हैं। सूर्य की ओर जो भी पीठ करके खड़ा होगा उसकी खुद की छाया उसका अंधकार बन जाती है। जिसकी पीठ सूर्य की ओर होगी उसकी खुद की छाया उसके सामने पड़ेगी और उसका मार्ग अंधकारपूर्ण हो जाएगा। और जो सूर्य की ओर मुंह कर लेता है उसकी छाया उसके लिए विलीन हो जाती है तथा उसकी आंखें और उसका रास्ता आलोकित हो जाता है।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक वे लोग, जो सूर्य की ओर पीठ किए रहते हैं और थोड़े से वे लोग हैं जो सूर्य की ओर मुंह कर लेते हैं। जो लोग सूर्य की ओर पीठ किए रहते हैं उनका जीवन दुख, पीड़ा और मृत्यु के अतिरिक्त कुछ भी नहीं, उनका जीवन एक दुःस्वप्न से ज्यादा नहीं। वे नाम मात्र को ही जीते हैं। कल्पना में ही उनका सारा आनंद होता है। आशाओं में ही उनकी सारी की सारी निष्ठा होती है। उपलब्धियां उनकी करीब-करीब शून्य होती हैं। और जो लोग सूर्य की ओर या प्रभु की ओर मुंह कर लेते हैं उनके जीवन में आमूल क्रांति घटित हो जाती है। एक ही दुख है कि हमारी पीठ उस तरफ हो जहां हमारा मुंह होना चाहिए।

लेकिन कुछ कारण हैं जिनकी वजह से जो होना चाहिए वह नहीं हो पाता और जो नहीं होना चाहिए वही होता रहता है। उन कारणों पर थोड़ा सा विचार करना है। इन तीन दिनों में सूर्य की ओर हमारा मुंह कैसे हो जाए इस संबंध में ही विचार करेंगे। कौन सी बातें हैं जो हमें रोके हैं, कौन सी बातें हैं जो हमें बांधे हुए हैं, कौन सी चित्त-अवस्थाएं हैं जो हमें अपने को ही पाने और अपने को ही उपलब्ध करने में बाधाएं बन जाती हैं, उन पर विचार करेंगे और यह भी विचार करेंगे कि उन बाधाओं को दूर कैसे किया जा सकता है।

सबसे पहली बात जो मैं आपसे कहना चाहूंगा इन तीन दिनों की चर्चा में, वह यह है कि केवल वे ही मनुष्य, केवल वे ही आत्माएं सत्य की ओर उन्मुख होने में समर्थ हो पाती हैं, जो अपने चित्त को समस्त वाद-विवादों से, सत्य के संबंध में प्रचलित समस्त पंथों और मतों से, सत्य के संबंध में बहुप्रचारित संस्थाओं, संप्रदायों और चर्चों से अपने को मुक्त कर लेती हैं। जो व्यक्ति आस्तिकता या नास्तिकता से बंध जाता है, जो व्यक्ति सत्य के संबंध में किन्हीं वादों, विवादों और पंथों में बंध जाता है, वह सत्य को उपलब्ध करने में या सत्य की ओर आंखें उठाने में असमर्थ हो जाता है।

यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात है, क्योंकि इस समय जमीन पर कोई तीन सौ पंथ हैं, कोई तीन सौ धारणाएं सत्य के संबंध में प्रचारित और प्रतिपादित की जाती हैं। कोई तीन सौ संप्रदाय हैं जो यह दावा करते हैं कि जो वे कहते हैं वही सत्य है और शेष जो कहते हैं वह सत्य नहीं है। इनके दावे, इनके विरोध, इनके वाद-विवाद सारे जगत के लोगों को अनेक-अनेक खंडों और टुकड़ों में तोड़े हुए हैं। फिर इनमें से कोई भी धारणा कोई मनुष्य स्वीकार कर ले, वह स्वीकार करते ही चित्त बंध जाता है, सीमित हो जाता है और असीम सत्य की ओर आंखें उठानी असंभव हो जाती हैं।

आप भी किसी न किसी पंथ, किसी न किसी धर्म, किसी न किसी संप्रदाय के पक्ष में खड़े होंगे। आप भी किसी मंदिर, किसी चर्च के अनुयायी होंगे। आपने भी बचपन से कुछ बातें स्वीकार कर ली होंगी जो दूसरों ने आपको सिखा दी हैं--जो समाज ने, संप्रदाय ने प्रचारित करके आपके मस्तिष्क में प्रविष्ट करा दी हैं। तो आप स्मरण रखिए, यदि आप किसी भांति किसी पक्ष में बंधे हैं तो और कुछ भी हो जाए सत्य का अनुभव आपको नहीं हो सकता।

जो व्यक्ति स्वयं को किसी धारणा से बांध लेता है वह उस सत्य को जानने में कैसे समर्थ होगा जिसकी कोई धारणा संभव नहीं है? जो व्यक्ति किसी किनारे से अपने को बांध लेता है वह कैसे समर्थ होगा उस सागर में जाने को जहां कि सब किनारे छोड़ देने पड़ते हैं? निष्पक्ष हुए बिना कोई सत्य के पक्ष में नहीं हो सकता है। सबसे बड़ी बाधा मनुष्य की जिज्ञासा की स्वतंत्रता में उनकी यही प्रतिपादित, यही प्रचलित और परंपराओं से स्वीकृत वाद-विवाद हो जाते हैं। शास्त्र और शब्द रोक लेते हैं। विचार और विचारधाराएं बंधन बन जाती हैं। जब कि चित्त की मुक्ति चाहिए। चित्त पर कोई बंधन, कोई आरोपण नहीं होना चाहिए।

यदि आंखें किन्हीं चित्रों से भरी हों तो मैं आपको देखने में असमर्थ हो जाऊंगा। और यदि दर्पण किन्हीं तस्वीरों को पकड़ ले तो फिर दर्पण और दूसरों के प्रतिबिंब बनाने में असमर्थ हो जाएगा। जो समाज सत्य को जाने बिना, कुछ जाने बिना स्वीकार कर लेता है वह सत्य का प्रतिफलन देने में और सत्य का प्रतिबिंब देने में असमर्थ हो जाता है। चित्त का अत्यंत निर्दोष, निष्पक्ष और स्वच्छ होना जरूरी है। उसी अवस्था में आंखें उस ओर उठ सकती हैं और उसी अवस्था में चित्त की गति और चेतना की नाव आनंद-सागर की ओर जा सकती है।

पहली बात हैः जिज्ञासा मुक्त और स्वतंत्र हो। इस समय इस जमीन पर बहुत थोड़े लोग हैं जिनकी जिज्ञासा स्वतंत्र और मुक्त है।

मैंने एक छोटी सी कहानी सुनी है; अत्यंत काल्पनिक कहानी है लेकिन विचार करने जैसी है। वह शायद उपयोग की हो। मैंने सुना है, एक मुसलमान सूफी फकीर ने एक रात्रि स्वप्न देखा कि वह स्वर्ग में पहुंच गया है और उसने वहां यह भी देखा कि स्वर्ग में बहुत बड़ा समारोह मनाया जा रहा है। सारे रास्ते सजे हैं। बहुत दीप जले हैं। बहुत फूल रास्ते के किनारे लगे हैं। सारे पथ और सारे महल सभी प्रकाशित हैं। उसने जाने वालों से पूछा, आज क्या है? क्या कोई समारोह है? और उसे ज्ञात हुआ कि आज भगवान का जन्म-दिन है और उनकी सवारी निकलने वाली है। वह एक दरख्त के पास खड़ा हो गया।

लाखों लोगों की बहुत बड़ी शोभायात्रा निकल रही है। सामने घोड़े पर एक अत्यंत प्रतिभाशाली व्यक्ति बैठा हुआ है। उसने लोगों से पूछा, यह प्रकाशवान व्यक्ति कौन है? ज्ञात हुआ कि यह ईसा मसीह हैं और उनके पीछे उनके अनुयायी हैं। लाखों-करोड़ों उनके अनुयायी हैं। उनके निकल जाने के बाद वैसे ही दूसरे व्यक्ति की सवारी निकली, तब फिर उसने पूछा कि यह कौन हैं? उसे ज्ञात हुआ, यह हजरत मोहम्मद हैं। वैसे ही लाखों लोग उनके पीछे हैं। फिर बुद्ध हैं। फिर महावीर हैं, जरथुस्त्र हैं, कनफ्यूशियस हैं और सबके पीछे करोड़ों-करोड़ों लोग हैं। जब सारी शोभायात्रा निकल गई तो पीछे अत्यंत दीन और दरिद्र सा एक वृद्ध घोड़े पर सवार है। उसके पीछे कोई नहीं है। उसने पूछाः यह कौन है? और ज्ञात हुआ कि यह स्वयं परमात्मा हैं। घबड़ा कर उसकी नींद खुल गई और हैरान हुआ... ।

यह स्वप्न में सत्य नहीं हुआ है, यह आज सारी जमीन पर सत्य हो गया है। लोग क्राइस्ट के साथ हैं, बुद्ध के साथ हैं, राम के साथ हैं, कृष्ण के साथ हैं, परमात्मा के साथ कोई भी नहीं है। जिसे परमात्मा के साथ होना हो उसे बीच में किसी मध्यस्थ को लेने की कोई भी जरूरत नहीं। और जो परमात्मा के साथ हो, वह स्मरण रखे कि

क्राइस्ट के साथ हो ही जाएगा, लेकिन जो क्राइस्ट के साथ है, अनिवार्य नहीं है कि वह परमात्मा के साथ हो जाएगा। जो परमात्मा के साथ है, वह राम, बुद्ध, कृष्ण और महावीर के साथ हो ही जाएगा, लेकिन जो उनके साथ है स्मरण रखे कि अनिवार्य नहीं कि वह परमात्मा के साथ हो जाएगा।

और फिर यह भी स्मरण रहे कि जो बुद्ध के साथ है, कृष्ण के विरोध में है; और जो क्राइस्ट के साथ है और राम के विरोध में है; और जो महावीर के साथ है तथा कनफ्यूशियस के विरोध में है, वह कभी परमात्मा के साथ नहीं हो सकता। जो परमात्मा के साथ है वह एक ही साथ क्राइस्ट, राम, बुद्ध, महावीर सबके साथ हो जाता है।

अपने मन में यह स्मरण रखने की बात है कि सत्य बहुत नहीं हो सकते, सत्य एक ही हो सकता है। और जो एक सत्य है उसके साथ अगर होना है तो सत्य के नाम से जो सत्य की अनेक धारणाएं प्रचलित हैं उनका त्याग कर देना अनिवार्य है। इसके पहले कि कोई मनुष्य धार्मिक हो सके, उसे जैन, हिंदू, मुसलमान और ईसाई होना छोड़ देना चाहिए। इसके पहले कि कोई धार्मिक हो सके, उसे धर्मों के नाम से जो पंथ प्रचलित हैं उनसे थोड़ा दूर हट जाना चाहिए। जितना उनसे दूर होगा उतना धर्म के निकट होगा और जितना आबद्ध होगा उतना धर्म से दूर हो जाएगा। यह स्वाभाविक भी है। किंतु यह इसलिए भी स्वाभाविक है कि जिस सत्य को हम दूसरों से स्वीकार कर लेते हैं वह हमारे लिए सत्य नहीं होता है।

सत्य के संबंध में कुछ बातों में से एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि वह स्वानुभूत हो तो ही सत्य होता है, दूसरे का हो तो असत्य हो जाता है। सत्य कोई भी दूसरा व्यक्ति तीसरे व्यक्ति को नहीं दे सकता। सत्य कोई ऐसी संपदा नहीं जो हस्तांतरित हो सके या ट्रांसफर हो सके। सत्य कोई ऐसी बात नहीं है कि आप उसे उधार ले सकें या चोरी कर सकें या भिक्षा में पा सकें। सत्य अकेली संपत्ति है जो स्वयं ही पानी होती है और कोई रास्ता नहीं है।

बहुत प्राचीन समय में ऐसा हुआ कि एक राज्य में एक युवक की अत्यंत वीरतापूर्ण घटनाओं से, उसके अत्यंत दुस्साहसपूर्ण कार्यों से राज्य का सम्राट बहुत प्रसन्न हो गया और उसने कहा कि राज्य का जो सबसे सम्मानित पद है वह दूंगा तथा जो सबसे सम्मानित पदवी है उसे समर्पित करूंगा, उसे भेंट करूंगा।

यह घटना राज्य के द्वारा इस तरह से सम्मानित होने की तीन सौ वर्षों से उस राज्य में नहीं घटी थी। उस युवक को प्रसन्न हो जाना चाहिए था। लेकिन लोगों ने राजा को कहा कि युवक प्रसन्न नहीं है। राजा ने उसे बुलाया और उससे कहा कि तीन सौ वर्षों से यह सम्मान किसी को नहीं मिला है; राज्य का सर्वोच्च सम्मान मैं तुम्हें दे रहा हूं, किंतु सुना कि तुम प्रसन्न नहीं हो!

उस युवक ने कहा कि मुझे धन नहीं चाहिए, मुझे पद नहीं चाहिए, मुझे यश और गौरव नहीं चाहिए, मैं कुछ और मांगता हूं; यदि राज्य उसे दे सके तो मैं कृतकृत्य हो जाऊं। राजा ने कहा कि जो कहोगे मैं दूंगा। सारे राज्य की शक्ति लग जाए तो भी मैं दूंगा।

उस युवक ने कहा कि मुझे सत्य चाहिए। राजा दो क्षण चुप रह गया और उसने कहा कि मुझे क्षमा करो, वह मेरे पास तो है नहीं जो मैं दे दूं। मुझे खुद ही सत्य का पता नहीं और मेरे सारे राज्य की सारी शक्ति और संपदा उसे खरीद नहीं सकेगी। क्योंकि अगर राज्य की शक्तियां और संपदाएं सत्य को खरीद सकतीं तो जिन्होंने राज्य, सत्य को पाने के लिए छोड़े वे नासमझ थे। क्योंकि अगर संपदा सत्य को खरीद सकती तो जिन्होंने संपदा को ठोकर मारी और सत्य को खोजा वे पागल थे। क्योंकि अगर सत्य असल में किसी से मांगने से मिल जाता तो जिन्होंने तपस्या की, साधना की वे गलती में थे।

शिक्षा मांगनी नहीं चाहिए। तो यह उसने कहा कि मुझे दिखाई नहीं देता कि सत्य कोई दे सकता है! फिर मेरे पास सत्य है भी नहीं, मैं कैसे दे सकता हूं! हां, मैंने सुना है पहाड़ में एक संन्यासी के बाबत कि उसे सत्य उपलब्ध हुआ है। मैं तुम्हारी ओर से प्रार्थना करूंगा उस संन्यासी के चरणों में सिर रख कर।

उस पहाड़ पर राजा उस युवक को साथ ले गया। उसके चरणों में सिर रख कर उसने प्रार्थना की और कहा कि जो मैंने वरदान दिया है कि जो यह मांगेगा वह मैं दूंगा, लेकिन इसने सत्य मांगा और मेरे पास तो वह है ही नहीं! मैं आपके पास आया हूं, इसे सत्य दे दें। वह संन्यासी भी वैसा ही सुन कर चुप रह गया जैसे खुद राजा रह गया था। और फिर उसने कहा, अकेला सत्य एक ऐसा तत्व है जो कोई दूसरा किसी को नहीं दे सकता है। जिस दिन सत्य दिया जा सकेगा उस दिन सत्य सत्य नहीं रह जाएगा।

सत्य दिया नहीं जाता, उसे तो पाना होता है। लेकिन हम जिन सत्य की धारणाओं को पकड़ लेते हैं वे पाई हुई नहीं हैं, दी हुई हैं। आप जो भी धर्म स्वीकार किए हैं वह आपने पाया नहीं है, स्वीकार किया है। परंपरा ने, माता-पिता ने, परिवार ने, संस्कारों ने आपको दिया है। जो भी दिया गया है वह सत्य नहीं हो सकता। अधिक लोग उस दिए गए सत्य को ही सत्य मान कर जीवन व्यतीत कर देते हैं और इससे बड़ी कोई दूसरी वंचना नहीं हो सकती।

स्मरण रखिए, जो भी आपको दिया गया है वह सत्य नहीं हो सकता। सत्य को पाने के लिए पहला चरण होगा, जो दिया गया है उसे अस्वीकार कर देना। अगर नास्तिकता दी गई है तो नास्तिकता अस्वीकार कर दें, अगर आस्तिकता दी गई है तो आस्तिकता अस्वीकार कर दें।

सोवियत रूस में बीस करोड़ लोग हैं। चालीस वर्षों से उनका देश नास्तिकता का संस्कार दे रहा है। शिक्षा में, प्रचार में, साहित्य में, वे अपने युवकों को समझा रहे हैं कि नहीं, न कोई ईश्वर है, न कोई परमात्मा है और न कोई आत्मा है; मोक्ष और धर्म सब अफीम का नशा है। चालीस वर्ष में बीस करोड़ लोगों को उन्होंने सहमत कर लिया है कि धर्म अफीम का नशा है और कोई ईश्वर नहीं है, और कोई आत्मा नहीं है। चालीस वर्ष के प्रोपेगेंडा ने बीस करोड़ लोगों के मस्तिष्क में यह बैठा दिया है कि नास्तिकता ही सत्य है और आस्तिकता मूर्खता की बात है।

आप कहेंगे कि उनकी दृष्टि गलत है; मैं कहूंगा, आपकी दृष्टि भी गलत है। अगर चालीस वर्ष के प्रचार से नास्तिकता भीतर बैठ सकती है तो आपकी भी जो आस्तिकता है वह चार हजार वर्ष के प्रचार से आस्तिकता भी बैठ सकती है। उनकी नास्तिकता जैसी थोथी है, आपकी आस्तिकता भी उससे ज्यादा मूल्य नहीं रखती; वह भी उतनी ही थोथी है। और यही वजह है कि आप कहने को आस्तिक होंगे, धार्मिक होंगे, मंदिर में, पूजा में निष्ठा रखते होंगे, लेकिन आपके जीवन में धर्म की कोई किरण दिखाई नहीं देगी। यही वजह है कि दूसरे का दिया हुआ धर्म कभी जीवंत नहीं हो सकता। कभी वह आपके प्राणों की ऊर्जा नहीं बन सकता है। वह केवल आपकी एक बौद्धिक निष्ठा और आस्था मात्र बन कर रह जाता है।

जिज्ञासा स्वतंत्र होनी चाहिए। किससे स्वतंत्र? जीवन से, संस्कार से, संप्रदाय से। जो संस्कार से आबद्ध है, समाज और संप्रदाय से आबद्ध है, और जो संस्कारों से घिरा हुआ है, उसके पैर जमीन में गड़े हैं; वह आकाश में उड़ नहीं सकता। किनारे तो उसकी नाव की जंजीरें बंधी हैं; वह आनंद-सागर में यात्रा नहीं कर सकता।

लेकिन समाज को छोड़ कर, भाग कर संन्यासी हो जाते हैं। ऐसे सैकड़ों संन्यासियों से मैं निकट से परिचित हूं, जिन्होंने समाज छोड़ दिया, घर छोड़ दिया और परिवार छोड़ दिया। उन संन्यासियों से जब मैं मिलता हूं तो उनसे कहता हूं कि समाज छोड़ कर भाग जाने से कुछ भी नहीं होगा, क्योंकि समाज के संस्कार

अगर चित्त में बैठे हैं तो समाज के भीतर में आप हैं। घर-बार और मां-बाप को छोड़ कर भाग जाने से कुछ नहीं होगा; मां-बाप ने जो विश्वास दिए थे वे आपके भीतर बैठे हैं तो आप मां-बाप के साथ ही हैं।

समाज और संस्कार को छोड़ने का अर्थ यह नहीं है कि कोई गांव को छोड़ कर जंगल में चला जाए। समाज को छोड़ने का अर्थ है कि समाज ने जो विश्वास दिए हैं उनको छोड़ देना है। बड़े साहस की बात है। जिज्ञासा इस जगत में सबसे बड़े साहस की बात है। इंक्वायरी इस जगत में सबसे बड़े साहस की बात है। अपने मां-बाप को छोड़ना उतना कठिन नहीं, समाज को छोड़ कर भाग जाना उतना कठिन नहीं, जितना समाज के द्वारा दिए गए संस्कारों को छोड़ देना कठिन है। क्यों? क्योंकि डर लगता है अकेला हो जाने का। समाज में, भीड़ में हम अकेले नहीं होते, हजारों लोग हमारे साथ हैं। उनकी भीड़ हमें विश्वास दिलाती है कि जब इतने लोग मानते हैं इस बात को तो वह बात जरूर सत्य होगी। भीड़ विश्वास दिला देती है। मूर्खतापूर्ण बातों पर भी भीड़ विश्वास दिला देती है। अगर भीड़ साथ हो तो व्यक्तियों से ऐसे काम कराए जा सकते हैं जो वे अकेले में करने को कभी राजी न होंगे।

दुनिया में जितने पाप हुए हैं, उनमें अकेले व्यक्तियों ने बड़े पाप नहीं किए हैं, भीड़ ने बड़े पाप किए हैं। भीड़ पाप इसलिए कर सकती है कि उसमें ऐसा लगता है कि जो कहा जा रहा है वह ठीक ही होगा। इतने लोग साथ हैं, इतने लोग नासमझ हो सकते हैं? अगर एक धर्म यह कहे कि हम एक मुल्क पर हमला करते हैं; क्योंकि यह धर्म का जेहाद है; क्योंकि हम धर्म का प्रचार करने जा रहे हैं; दुनिया को धर्म सिखाने जा रहे हैं। अगर एक आदमी को यह कहा जाए कि धर्म के प्रचार में हजारों लोगों की हत्या करनी होगी तो वह आदमी शायद संकोच करे, विचार करे। जब वह देखता है कि लाखों लोग साथ हैं तो अपने विचार की फिकर छोड़ देता है कि इतने आदमी साथ हैं तो जो कहते होंगे ठीक ही कहते होंगे। इसलिए भीड़ को छोड़ने में डर लगता है। क्योंकि भीड़ को छोड़ने का अर्थ है पूरी जीवन-दृष्टि पर रिकंसीडरेशन करना होगा। इसलिए सारे लोग भीड़ से चिपके रहते हैं। हर आदमी भीड़ से चिपका रहता है।

लेकिन स्मरण रखें, जो अकेले होने को राजी नहीं है, जो भीड़ से मुक्त नहीं हो सकता, वह सत्य की बातों पर विचार करना छोड़ दे। उसे सत्य से कभी कोई संबंध नहीं होगा। सत्य का रास्ता बहुत अकेला रास्ता है। लोग सोचते हैं, अकेले का अर्थ है पहाड़ पर चले जाना। लोग सोचते हैं, अकेले का अर्थ है घर-द्वार छोड़ देना।

अकेले का अर्थ है, भीड़ का साथ छोड़ देना। भीड़ से मुक्त हो जाए तो आदमी अकेला हो जाए। जिज्ञासा साहस की बात है और साहस शर्त है सत्य को पाने की। जिनमें साहस नहीं है वे जमीन पर ही रेंगते रहेंगे, आकाश में उड़ नहीं सकेंगे। जिनमें साहस नहीं है वे दूसरों के उधार सत्यों को ही ढोते रहेंगे, अपने सत्य की तलाश नहीं कर सकेंगे। और जिसके पास अपना सत्य न हो, वह जीवित है? तो उसके जीवित होने का न कोई अर्थ है और न कोई अभिप्राय है और न ही यह उचित है कि हम उसे जीवित कहें। जब अपना सत्य होता है तो जीवन में प्रकाश हो जाता है, क्योंकि सत्य दीए की भांति सारे जीवन को आलोकित कर देता है।

पहला सूत्र हैः अपनी जिज्ञासा को जीवन से मुक्त कर लें, अपनी जिज्ञासा को संस्कार से मुक्त कर लें, अपनी जिज्ञासा को निजी कर लें, व्यक्तिगत कर लें, और सत्य को अपने और परमात्मा के बीच का संबंध समझें। उसमें आपका परिवार, आपका संप्रदाय, आपका परिवार कहीं भी नहीं आता है। और यह चित्त को मुक्त करके उसकी जंजीरों को तोड़ देने की पहली धारणा है।

पहला सूत्र मैंने आपको कहा अपनी जिज्ञासा को मुक्त करने का। दूसरी बात जो जिज्ञासा से ही संबंधित है और मैंने कही है वह है साहस को उत्पन्न करने की। हम सारे लोग अत्यंत कमजोर हैं, हम सारे लोग अत्यंत दरिद्र

हैं, हम सारे लोग अत्यंत शक्तिहीन हैं। और हमारी शक्तिहीनता और हमारी दरिद्रता और हमारे साहस की कमी इकट्ठी मिल कर हमारी गति को, हमारे ऊपर उठने को, हमारे ऊर्ध्वगमन को बंद कर देती है। यदि कुछ थोड़ा भी हम साहस जुटा पाएं, थोड़ा सी शक्ति जुटा पाएं, थोड़ी हिम्मत कर सकें, तो गति संभव हो सकती है।

और यह मैं आपको कहूं कि कोई कितना भी कमजोर हो, एक कदम उठाने की सामर्थ्य सब में है। हजार मील चलने की न हो, हिमालय चढ़ने की न हो, लेकिन एक कदम उठा लेने की सामर्थ्य सबके भीतर है। अगर हम थोड़ा सा साहस जुटाएं तो एक कदम निश्चित ही उठा सकते हैं।

दूसरी बात आपसे यह कहूं कि जो एक कदम उठा सकता है वह हिमालय चढ़ सकता है, जो एक कदम उठा सकता है वह हजारों मील चल सकता है। क्योंकि इस जगत में एक कदम से ज्यादा चलने का कोई सवाल नहीं है। एक कदम से ज्यादा कभी कोई चलता भी नहीं। हमेशा एक कदम चला जाता है। गांधीजी अपने प्रार्थना गीतों में एक भजन गाया करते थे; उस भजन की एक पंक्ति हैः वन स्टेप इ.ज इनफ फॉर मी--एक ही कदम मेरे लिए काफी है। परमात्मा से प्रार्थना है कि मुझे एक ही कदम की शक्ति दे दे। एक कदम मेरे लिए काफी है।

एक कदम सबके लिए काफी है। क्योंकि दो कदम कोई भी एक साथ नहीं उठा सकता है। एक ही कदम उठाने की सामर्थ्य जुटा लेने की बात है। और उतनी सामर्थ्य प्रत्येक में है, जो जीवित है; और उसे जुटाने की बात है।

हमारा साहस, हमारी शक्ति, करीब-करीब बिखरी रहती है। उसे हम जुटा नहीं पाते हैं। उसे हम इकट्ठा नहीं कर पाते हैं। क्या उसे हम इकट्ठा इसलिए नहीं कर पाते कि सत्य की जिज्ञासा हमारे भीतर कभी प्यास नहीं बनती? वह एक बौद्धिक ऊहापोह रहती है? अधिक लोग हैं जो मुझसे पूछते हैं कि ईश्वर है? अधिक लोग हैं जो पूछते हैं कि आत्मा है? यदि मैं उनसे कहूं कि क्या तुम सौ कदम मेरे साथ चलने को राजी हो तब मैं उत्तर दूंगा, वे कहेंगे कि अभी मेरे पास फुर्सत नहीं है! अगर मैं उनसे कहूं कि आप तीन दिन तक मेरे पास रुकने का धैर्य रख सकोगे तो मैं उत्तर दूं, शायद वे कहेंगे कि तीन दिन हमारे पास नहीं हैं।

ईश्वर की, आत्मा की, सत्य की जो जिज्ञासा मात्र बौद्धिक ऊहापोह हो, मात्र एक बौद्धिक खुजलाहट हो, तो आप साहस को नहीं जुटा सकेंगे। साहस केवल वे ही जुटा पाते हैं जिनकी जिज्ञासा जिज्ञासा ही नहीं, अभीप्सा होती है, जिनकी जिज्ञासा प्यास होती है।

बुद्ध के पास एक युवक गया और उस युवक ने कहाः मैं सत्य के संबंध में जानने को आपके पास आया हूं। बुद्ध ने पूछा, जानने के मूल्य के बतौर क्या चुका सकोगे? सत्य तो जाना जा सकता है, लेकिन मूल्य क्या चुकाओगे? क्राइस्ट के पास भी एक युवक गया और उसने कहा कि मैं जानने को आया हूं कि क्या परमात्मा है? क्राइस्ट ने कहा कि यह तो जान सकोगे, लेकिन कीमत क्या चुकाने को राजी हो? जाओ, अपनी सारी संपत्ति को बांट कर आ जाओ, मैं तुम्हें सत्य के लिए आश्वासन देता हूं कि सत्य की ओर तुम्हें पहुंचाया जाएगा। उस युवक ने कहा कि संपत्ति को बांट आऊं? फिर विचार करना पड़ेगा! वह युवक वापस लौट गया। फिर उस गांव से ईसा कई बार गुजरे, लेकिन वह उनसे मिलने नहीं आया।

एक भारतीय साधु चीन गया था, बोधिधर्म। वह हमेशा दीवाल की ओर मुंह करके बैठता था, कभी लोगों की ओर मुंह नहीं करता था। लोगों ने उससे चीन में पूछा कि यह क्या पागलपन है, आप दीवाल की ओर मुंह किए बैठे हो?

बोधिधर्म ने कहा कि तुम्हारी तरफ मैं मुंह करता हूं तो तुमको मैं दीवार की तरह पाता हूं। तुमसे बात करने का कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि तुम्हारे भीतर जिस बात की प्यास नहीं है, उसकी वर्षा करने का फायदा

क्या? तुम भी दीवाल की भांति हो इसलिए मुंह दीवाल की तरफ किए रहता हूं। कम से कम दीवाल पर दया तो नहीं आती। जब कोई आदमी ऐसा आएगा जिसके भीतर प्यास हो तो मैं उसकी ओर मुंह कर दूंगा।

नौ वर्ष तक वह चीन में था। उसने दीवाल की तरफ से मुंह नहीं हटाया। एक दिन हुईनेंग नाम का एक व्यक्ति आया और उसके पीछे खड़ा हो गया। हुईनेंग ने कहा कि इस तरफ मुंह कर लो! बोधिधर्म, मुंह इस तरफ कर लो! वह आदमी आ गया जिसकी प्रतीक्षा थी। बोधिधर्म ने कहा कि प्रमाण? दीवाल की तरफ ही मुंह रहा और कहा कि प्रमाण? इस आदमी ने एक हाथ काट कर उसके हाथ में रख दिया। बोधिधर्म घबड़ा गया। और उस आदमी ने कहा कि अगर थोड़ी देर और रुके तो गर्दन से प्रमाण दे दूंगा। बोधिधर्म ने मुंह इस तरफ कर लिया। उसने कहाः ठीक है कि वह आदमी आ गया।

सत्य के लिए अगर थोड़ी सी प्यास हो तो अदम्य साहस की जो बिखरी हुई शक्तियां हैं वे इस प्यास के केंद्र पर इकट्ठी हो जाती हैं। स्मरण रखिए, सत्य हमेशा प्यास के केंद्र पर इकट्ठा हो जाता है। जो प्यास होती है वह शक्ति बन जाती है। आपकी जो प्यास है वही आपकी शक्ति है।

शीरी का आपने नाम सुना होगा, फरहाद और शीरी का। शीरी ने फरहाद से पूछा कि तुम मुझे प्रेम करते हो? फरहाद ने कहा कि अगर कहूंगा तो क्या विश्वास होगा? कैसे विश्वास दिलाऊं? शीरी ने कहा कि गांव के पीछे जो पहाड़ है उसको खोद कर अलग कर दो। फरहाद ने फावड़ा उठाया और पहाड़ पर चला गया। कहा जाता है कि उसने सूरज उगने से पहले पहाड़ को खोद कर फेंक दिया।

यह बात तो काल्पनिक ही कही जा सकती है, सूरज उगने के पहले उसने पहाड़ को खोद कर फेंक दिया। लेकिन यह बात काल्पनिक हो तो भी सच है। जिनके भीतर प्यास हो और प्रेम हो, उनके लिए और भी कम समय में पहाड़ खोद कर फेंका जा सकता है। असल में पहाड़ है ही इसलिए क्योंकि हमारे अंदर प्यास नहीं है। प्यास हो तो पहाड़ मिट जाता है। रास्ते पर जो भी अड़चनें हैं वे इसलिए हैं कि हमारे भीतर प्यास नहीं है। हमारे भीतर प्यास की जलती अग्नि हो तो रास्ता सीधा और राजपथ हो जाता है। सारी कठिनाइयां दूर हट जाती हैं, क्योंकि कठिनाइयों का अनुपात वही होता है जो हमारी कमजोरी का अनुपात है। जितनी शक्ति इकट्ठी हो उतनी कमजोरी टूट जाती है और मार्ग की बाधाएं नष्ट हो जाती हैं। जिनकी केवल जिज्ञासा है वे केवल ज्यादा से ज्यादा तत्व-चर्चा को उपलब्ध हो सकते हैं, तत्व-साक्षात को नहीं।

पूरब और पश्चिम का यही फर्क है। पश्चिम ने भी दो-ढाई हजार वर्षों में साहित्य का अनुसंधान किया है, लेकिन वे फिलासफी के ऊपर नहीं जा सके, वे रियलाइजेशन पर नहीं जा सके। उन्होंने तत्व-चिंतन तो किया, लेकिन वे केवल जिज्ञासाएं मात्र थीं, अभीप्साएं नहीं थीं। वे कोई ऐसी बातें नहीं थीं जिन पर वे अपने प्राण को न्योछावर कर सकें और समर्पित कर सकें। वे कोई ऐसी तलाश और खोजें नहीं थीं कि वहां वे अपने जीवन के मूल्य चुकाने को राजी हों। और जो मनुष्य सत्य के ऊपर किसी और चीज को रखता है वह यह समझ ले, अभी उसकी प्यास नहीं जगी और समय नहीं आया।

आप अपने भीतर निर्णय करें और विचार करें कि क्या परमात्मा को या सत्य को, जो भी है जगत में उसको खोजने के लिए, जो भी भीतर है उसको खोजने के लिए प्यास का जागरण शुरू हो गया है? यदि जागरण शुरू नहीं हुआ तो उसके पहले खोज में लग जाना व्यर्थ होगा। तब बेहतर है कि पहले प्यास को सजग करने की चेष्टा करें और फिर तलाश में लगें। बहुत से लोग बिना प्यासे हुए खोजने चले जाते हैं। वे जीवन भर दौड़ते हैं, उन्हें कुछ मिलता नहीं है।

मुझे संन्यासी मिलते हैं, वे कहते हैं कि मुझे चालीस वर्ष हुए, हम खोज कर रहे हैं किंतु कुछ मिला नहीं। मैं उनसे पूछता हूं कि पहले यह खोजो कि खोजने के पहले प्यास पैदा हो गई कि नहीं? अगर प्यास पैदा नहीं हुई तो खोज व्यर्थ है, क्योंकि पानी की पहचान ही नहीं हो सकेगी जब तक प्यास नहीं होगी। मेरे सामने नदी बहती रहे, झरने बहते रहें, और मेरे भीतर प्यास न हो तो पानी को पहचानूंगा कैसे?

पानी की पहचान पानी में नहीं, मेरी प्यास में है। यदि मेरे भीतर प्यास है तो पानी पहचान लिया जाएगा। और मेरे भीतर प्यास नहीं है तो पानी पहचाना नहीं जा सकेगा। सत्य तो निरंतर मौजूद है। मेरे भीतर प्यास है तो उसी वक्त पहचाना जा सकेगा। और मेरे भीतर प्यास न हो तो कैसे पहचानूंगा?

सत्य को शास्त्रों से नहीं, प्यास से पहचाना जाता है। तो इसके पहले कि प्यास हो... कैसी प्यास हो? जिज्ञासा हो अकेली? जिज्ञासा काफी नहीं है। जिज्ञासा अभीप्सा बने--प्राणों की प्यास बन जाए। और प्राणों की प्यास कैसे बनेगी? कुछ चीजों को देखने से प्राणों की प्यास बन जाएगी। आंख खोलें और चारों तरफ देखें।

वहां दूर इटली में एक साधु हुआ है, और जब वह मर रहा था तो लोगों ने उससे पूछा कि तुम साधु कैसे हुए? उसने कहा कि मैंने आंख खोल कर देखा तो साधु होने के सिवाय कोई उपाय नहीं रह गया।

पूछा, आंख खोल कर देखा? हम भी आंख खोल कर देख रहे हैं!

उसने कहाः मैंने बहुत कम लोग देखे जो आंख खोल कर देख रहे हों, अधिक लोग आंख बंद किए देख रहे हैं।

मैं भी आपसे कहता हूं कि अधिक लोग आंख बंद करके देख रहे हैं। अगर आंख खोल कर देखेंगे तो इतनी प्यास पैदा होगी उसको जानने के लिए कि जो इस सबके पीछे छिपा है, जिसका कोई हिसाब नहीं, सारे प्राण ही प्यास की लपटों में बदल जाएंगे।

आंख खोल कर देखने का अर्थ है जो दिखाई पड़ा है, सामान्यतः जो दिखाई पड़ रहा है, वही नहीं, बल्कि सामान्यतः जो दिखाई पड़ रहा है उसके पीछे जो राज छिपे हुए हैं, वह देखना चाहिए।

बुद्ध का जन्म हुआ तो ज्योतिषियों ने बुद्ध के पिता से कहा कि यह बच्चा बड़ा होकर या तो चक्रवर्ती या संन्यासी हो जाएगा। सारे घर में रुदन हो गया, सारे घर में घबराहट फैल गई। एक ही पुत्र हुआ था, बहुत प्रतीक्षा के बाद हुआ था, और वह भी संन्यासी हो जाएगा! तो बुद्ध के पिता ने पूछा, क्या रास्ता है कि उसे संन्यासी होने से रोक सकूं? क्या मार्ग है कि यह संन्यासी होने से रुक जाए? हम अपनी सारी शक्ति लगा देंगे। ज्योतिषियों ने और विचारशील लोगों ने कहा, एक ही मार्ग है, इसकी आंखें न खुलने पाएं।

अजीब उन्होंने बात कहीः इसकी आंखें न खुलने पाएं, फिर आंखें खुलीं तो कोई भी आदमी संन्यासी हुए बिना नहीं रह सकता। आंख न खुलने पाए, यह कैसे होगा? उन्होंने मार्ग बताया, वैसी व्यवस्था की गई। व्यवस्था तीन बातों की की गईः बुद्ध को जगत में किसी तरह का दुख दिखाई न पड़े; बुद्ध को जगत में किसी भांति की जरा, मरण, मृत्यु दिखाई न पड़े; बुद्ध को जगत में विचार करने का मौका न आने पाए।

ये तीन व्यवस्थाएं की गईं। ये तीन व्यवस्थाएं आप भी किए हुए होंगे। हर आदमी अपने लिए किए हुए है। दुख दिखाई न पड़े, मृत्यु दिखाई न पड़े, और विचार का मौका न आने पाए। विचारशील लोगों ने कहा, ऐसा करें, इतना भोग में लगा दें, इतना व्यस्त कर दें कि विचार करने का मौका न आ पाए। जो जितना भोग में व्यस्त होगा, विचार करने का मौका कम पैदा होता है। जो जितना निरंतर सुबह से शाम तक लगा रहेगा उसे विचार करने का मौका कम पैदा होता है। भोग के बीच अंतराल हो तो विचार पैदा होता है।

तो उनके पिता ने ऐसी व्यवस्था की कि संगीत में, शराब में, स्त्रियों में, वैभव में सुबह से शाम रात आ जाए, उसे मौका न मिले सोचने का। ऐसे मकानों में उन्हें रखा गया कि कोई कुम्हलाया हुआ फूल बुद्ध नहीं देख पाएं। कुम्हलाए फूल रात में अलग कर दिए जाते थे। कोई कुम्हलाया हुआ पौधा न देख पाएं। वह जहां रहते थे वहां कोई वृद्ध व्यक्ति न जा पाए, कोई बीमार न जा पाए, ऐसी व्यवस्था थी। किसी तरह की रुग्णता का उन्हें पता न चले। जीवन में सुख ही सुख है, फूल ही फूल हैं, कोई कांटा नहीं है।

बुद्ध युवा हुए तब तक उनकी आंखें बंद रहीं।

हम में से बहुत से बूढ़े हो जाते हैं तब तक आंखें बंद रहती हैं।

एक दिन वह गांव से निकले एक महोत्सव में, युवक महोत्सव में भाग लेने को। रास्ते में पहली दफा कहा जाता है कि उन्होंने एक वृद्ध को देखा। बुद्ध ने अपने सारथी से पूछा, इस व्यक्ति को क्या हो गया है?

जिसने अब तक कोई बूढ़ा न देखा हो, स्वाभाविक था वह पूछे कि इस व्यक्ति को क्या हो गया है। अगर मुझसे बुद्ध के पिता ने पूछा होता कि मैं क्या करूं तो मैं कहता कि बचपन से जो भी दुख हैं, पीड़ाएं हैं, इसे देखने दें। यह उनका आदी हो जाएगा। जिन्होंने बुद्ध के पिता को सलाह दी वह सलाह गलत हो गई। चूंकि युवा होने तक कोई बूढ़ा नहीं देखा था। इसलिए जब एकदम से बूढ़ा देखा तो आंख खुल गई। वे आदी नहीं थे, वह हैबिट न हो पाई थी देखने की। और जो उनके पिता ने समझा था रुकने का कारण, वही आज जाने का कारण हो गया।

देखा बूढ़े को तो बुद्ध ने पूछाः यह क्या हो गया? सारथी ने कहाः यह आदमी बूढ़ा हो गया है। बुद्ध ने पूछाः क्या हर आदमी बूढ़ा हो जाता है? सारथी ने कहा, हर आदमी बूढ़ा हो जाता है। बुद्ध ने पूछा कि क्या मैं भी? सारथी ने कहाः कोई भी अपवाद नहीं है। बुद्ध ने कहाः रथ को वापस लौटा लो, युवक महोत्सव में जाने का क्या प्रयोजन?

यह देखना आंख खोल कर देखना है।

बुद्ध ने तीन प्रश्न पूछेः इस आदमी को क्या हुआ है? क्या हर आदमी को ऐसा हो जाएगा? क्या मुझे भी ऐसा हो जाएगा? सारथी ने कहाः कोई भी अपवाद नहीं है, आप भी बूढ़े हो जाएंगे। बुद्ध ने कहाः मैं बूढ़ा हो गया, रथ वापस लौटा लो।

और मार्ग में उन्होंने एक मृतक की लाश देखी। लोग उसके शव को लिए जाते हैं। और बुद्ध ने पूछाः यह क्या हुआ? क्या यह हर आदमी को होगा? क्या यह मुझे भी होगा? सारथी ने कहाः मैं कैसे कहूं? लेकिन जो जन्मता है उसको मरना होता है।

रथ वापस करो, मैं मर गया।

यह देखना है। यह आंख खोल कर देखना है। अगर कोई आंख खोल कर देखे तो हर मरते हुए आदमी में अपनी मृत्यु को देखेगा। अगर कोई आंख बंद करके देखेगा तो यह देखेगा कि वह आदमी मर रहा है, मैं मरूंगा यह उसे ख्याल नहीं आएगा। रोज हम मरते हुए देखते हैं, लेकिन आंख बंद है कि लोग तो मरते हैं लेकिन अपनी मौत दिखाई नहीं पड़ती।

जीवन में आंख खोल कर देखने की बात है। जो भी आप देख रहे हैं, विचार कर लें, समझ लें जो कि चारों ओर हो रहा है, आप उसके हिस्से हैं, और वह आपके साथ होगा।

अगर हम आंख खोल कर देख लें! हम कहते हैं कि महावीर के पास राज्य था, बुद्ध के पास राज्य था, वे अपने राज्य को ठोकर मार कर चले गए, लेकिन हम राज्य की खोज में लगे हैं। अगर हम देख सकें कि जिनके

पास धन है, आंख खोल कर देख सकें कि उनके पास आनंद है? लेकिन हम धन की खोज में लगे हैं। जिसके पास पद है, प्रतिष्ठा है, अगर हम आंख खोल कर देख सकें तो पूछना पड़ेगा कि उनके भीतर शांति है? लेकिन हम भी पद और प्रतिष्ठा की खोज में लगे हैं। हम अंधे ही हो सकते हैं, क्योंकि जिन गड्ढों में दूसरे गिरे हैं हम भी उन गड्ढों को खोज रहे हैं।

तो हमारे पास आंखें हैं यह नहीं माना जा सकता। आंख खोल कर देखने का अर्थ है जो चारों तरफ हो रहा है उसके प्रति सजग हो जाएं और अपने प्रति भी विचार कर लें कि जो चारों तरफ हो रहा है वह मेरे साथ भी होगा। निश्चित है उसका होना। अगर यह बोध दिख जाए, अगर यह दुख, यह पीड़ा, यह एक्झिस्टेंस, यह अस्तित्व की सारी की सारी संताप-स्थिति अनुभव हो जाए तो प्राण एकदम छटपटाने लगेंगे और यह ख्याल होगा कि क्या अगर यही जीवन है तो जीवन व्यर्थ है या फिर कोई और जीवन हो सकता है? उसकी मैं खोज करूं।

जब तक मुझे दिखाई न पड़े कि इस भवन में आग लगी है, तब तक मैं कैसे इस भवन के बाहर निकलने के लिए उत्कंठित हो सकता हूं! दूसरे मुझसे कहते हैं कि भवन में आग लगी है तो उनसे मैं कहूंगा कि ठहरिए, अभी चलता हूं। या उनसे कहूंगा, यह देखूंगा कि मौका लगेगा तो बाहर आ जाऊंगा। या उनसे मैं कहूंगा कि विचार से मैं सहमत हो गया हूं कि मकान में आग लगी है, लेकिन अभी जरा उलझन है इसलिए बाहर आने में असमर्थ हूं। दूसरे अगर मुझसे कहें तो। लेकिन अगर मुझे दिखाई पड़े, अगर मुझे दिखाई पड़े कि इस भवन में आग लगी है तो फिर इस भवन में मेरा एक भी क्षण रुकना असंभव है।

आंख खोल कर देखें तो सारे जगत में, सारे संसार में आग लगी हुई दिखाई पड़ रही है। हर आदमी अपनी कब्र पर बैठा हुआ है, हर आदमी अपनी चिता पर चढ़ा हुआ है। और जो दूसरे को चिता पर चढ़ा हुआ देख रहा है, वह गलत देख रहा है। हर आदमी चिता पर चढ़ा हुआ है। हम सब चिता पर बैठे हुए हैं और उसकी आग धीरे-धीरे डुबाती जाती है; और एक दिन भस्मीभूत कर देगी; और एक दिन जला कर राख कर देगी।

जन्म के दिन से ही हमारा मरण शुरू हो जाता है। उस दिन से ही हम चिता पर रख दिए गए। जिस दिन हम घर के पालने में रख दिए गए उस दिन हम चिता पर रख दिए गए। जिस दिन जमीन पर उतरे, उसी दिन हम कब्र पर भी उतर गए हैं। और हर आदमी जल रहा है। उसे बोध नहीं कि वह सारी दुनिया को देख रहा है लेकिन अपने नीचे नहीं देख रहा है कि वहां क्या हो रहा है।

प्रतिक्षण आप मौत में उतरते जा रहे हैं। जिसे आप जीवन कहते हैं वह रोज-रोज कब्र में उतर जाने के सिवाय और कुछ भी नहीं है। वह ग्रेज्युअल डेथ है; रोज-रोज मरते जाना है। यह समय-समय हम मर रहे हैं। इसे देखते हैं और तब एक घबड़ाहट जीवन को पाने की पैदा होगी। अगर इसी को जीवन समझ लिया तो चूक जाएंगे उस जीवन से जो मिल सकता था। अगर इसी को सत्य समझ लिया तो चूक जाएंगे उस सत्य को जो हो सकता था।

अगर यह मृत्यु दिख जाए जिसे हम जीवन समझते हैं और जिसे हम सत्य और वास्तविक समझते हैं, यह अवास्तविक और असत्य दिख जाए, तो सारे प्राण छटपटाते उसमें लग जाएं--किसी दूर, किसी अनंत छिपे हुए रहस्य की खोज में। और जब जिज्ञासा न होगी, तब प्यास होगी। तब अभीप्सा होगी और वैसी अभीप्सा ही केवल तैयार करती है व्यक्ति को--उसके साहस को; उसकी शक्ति को जुटा देती है।

मैंने कुछ थोड़ी सी बातें कहीं, बिल्कुल प्राथमिक भूमिका है। जिज्ञासा मुक्त हो, वाद-विवाद, विचार, पंथों से अलग हो, निष्पक्ष हो। कोई जरूरत नहीं मानने की कि ईश्वर है या नहीं, इतना ही काफी है कि क्या है उसे मैं

जानना चाहता हूं। जानने की प्यास, जानने की जिज्ञासा काफी है, मानने की कोई जरूरत नहीं। क्योंकि मानना दूसरे से आता है, जानना स्वयं से आता है। जो भी हम मानते हैं वह दूसरों से मानते हैं और जो भी हम जानते हैं वह स्वयं जानते हैं। धर्म मानना नहीं है, धर्म जानना है। धर्म विश्वास नहीं है, धर्म विवेक है। धर्म दूसरों के द्वारा गृहीत नहीं है, धर्म स्वयं के द्वारा अभीप्सित है।

पहली बात मैंने कहीः समस्त धारणाओं, मतों, पंथों--हिंदू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन--इनसे मुक्त कर लो। ये घेरे काफी नहीं हैं। ये दीवालें तोड़ दो। कितने सुख का दिन होगा अगर जगत में ये दीवालें गिर जाएं और केवल सत्य की जिज्ञासा रह जाए। और दूसरी बात मैंने कही, ऐसी जिज्ञासा के लिए साहस जुटाने की जरूरत है, क्योंकि बिना साहस के अकेले होने में डर लगेगा। भीड़ से, समाज से, संस्कार से मुक्त होने में डर लगेगा। अकेले होने के लिए साहस की जरूरत है। लेकिन मैंने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति की यह शक्ति है कि वह एक कदम चलने का साहस जुटा सकता है। लेकिन वह कदम भी तभी उठाने का विचार कर रहा होगा जब जिज्ञासा मात्र बौद्धिक खोज-बीन न हो वरन प्राणों की प्यास और अभीप्सा बन जाए। और अभीप्सा अभीप्सा तब बनेगी जब आंखें खुली हों।

आंखें खोलें और देखें, पूरी जिंदगी आपके चारों तरफ प्रकृति से प्रतिक्षण ईश्वर का आह्वव और संदेशा आ रहा है। हर घड़ी हर गिरते हुए पत्ते से आपकी मौत की खबर है। हर डूबते हुए सूरज से आपके डूबने की खबर है। हर मरते हुए आदमी में आपकी मृत्यु का आह्वव और संदेश है। हर तरफ जो दुख है वह आपका दुख है। सब तरफ जो संताप के तीर बिछे हैं वे आपके हैं। इस पीड़ा को आंख खोल कर अनुभव करें तो प्यास पैदा होगी। इस जीवन की व्यर्थता को अनुभव करें तो सार्थक जीवन को पाने का अनुभव-बोध पैदा होगा। इस जीवन को मृत समझें तो जो अमृत जीवन है उसकी तरफ आंखें अनायास उठनी शुरू हो जाएंगी।

जिज्ञासा, साहस और अभीप्सा, ये तीन सूत्र हैं। आज स्मरण रखिए और इसके बाद की भूमिकाओं के सूत्रों पर हम रोज विचार करेंगे। रात्रि के जो आपके प्रश्न होंगे उन पर हम चर्चा कर लेंगे। और यह तो सब बातचीत है उसी भांति जैसे एक कांटा लग जाए तो दूसरे कांटे से हम निकाल देते हैं लेकिन दूसरे कांटे को उसी जगह नहीं रख देते हैं। मैं जो बातें कर रहा हूं वे आपके मन में रखने के लिए नहीं हैं। नहीं तो मैं आपका दुश्मन हो गया। क्योंकि मैंने कुछ विचार निकाले और दूसरे डाल दिए। उससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। मेरी बातें उतनी ही व्यर्थ हैं जितनी वे बातें जो आपको दूसरों ने दी हैं। इसलिए इनको उनकी जगह नहीं रख लेना।

हम कोई पंथ और पक्ष खड़ा नहीं करना चाहते कि मैं आपको सारे पंथों से मुक्त कर लूं और एक पंथ में खड़ा कर दूं। वह तो मैं आपका दुश्मन हो जाऊंगा। वह तो वही बात हो गई। इससे क्या फर्क पड़ता है कि पंथ किसका है और विश्वास किसके हैं। मेरी बातों का इससे ज्यादा कोई भी मूल्य नहीं है कि जो कांटे लगे हैं आपको वे निकाल दिए जाएं दूसरे कांटे से। लेकिन दूसरा कांटा उतना ही कांटा है जितना पहला लगा हुआ है। और दोनों फेंक देने योग्य हैं। दूसरा कांटा रख लेने की जरूरत नहीं।

इसलिए मेरी बातों को कहीं रख नहीं लेना है। यह सब बातचीत है। अगर पहले से घुसी हुई बातचीत को निकाल देने की सामर्थ्य हो जाए तो ठीक, असली बात साधना है। वह हम रात्रि को आपके प्रश्नों के बाद उस पर थोड़े से प्रयोग करेंगे। लाख विचार उतने काम के नहीं हैं जितना एक छोटा सा अणुमात्र साधना का काम का है। लाख चिंतन अर्थ का नहीं है जितना प्यास से भर कर सत्य और परमात्मा की ओर आंखें उठा कर थोड़ी देर चुप हो जाने का मूल्य है। वह चुप होकर कैसे हम परमात्मा की ओर आंखें उठा सकते हैं--वे जो सूर्यमुखी के फूल देखे, वे जैसे सूरज की ओर मुंह उठाए खड़े हैं, वैसे हम कैसे आलोक और प्रकाश की ओर मुंह उठा सकते हैं--उसको तो

हम रात में ध्यान के प्रयोग में तीन दिन करेंगे। और बाकी तीन दिन आपके भीतर लगे हुए कांटे को दूसरे कांटे से निकालने की मैं चेष्टा करूंगा। फिर भी कोई-कोई कांटे लगे रह जाएं तो रात को शंका-समाधान में वह आप मुझसे बात कर सकते हैं।

अंत में परमात्मा से यही प्रार्थना करता हूं कि जो भी इस जमीन पर हैं उन सबको--उन सबों को उसकी अनुभूति उपलब्ध हो। जो भी इस जमीन पर हैं उनके हृदय उसके आलोक से भर जाएं। जो भी सत्तावान हैं, उसके प्रेम को, उसके आनंद को अनुभव कर सकें। उस प्रेम और उस आनंद के अनुभव में स्वयं के भी परमात्मा होने का अनुभव छिपा हुआ है। और जब तक यह अनुभव न हो जाए कि मैं ही परमात्मा हूं तब तक आप जीवित नहीं हैं, तब तक आप मृत प्रकृति के हिस्से हैं। और जिस दिन यह अनुभव आपके भीतर जागता है और आपके अणु-अणु में और श्वास-श्वास में व्याप्त हो जाता है कि मैं ही परमात्मा हूं, उस दिन जो आप जानते हैं उसे शब्दों में कहने का कोई उपाय नहीं।

लेकिन सारे जगत की, सारे प्राणों की जानी-अनजानी आकांक्षा उसी सत्य को जानने की है--उसी परिपूर्ण को, उसी अनंत को, उसी अनादि को, उसी सनातन को, जो सबके भीतर छिपा है। जो फिर से प्रकट नहीं है। जिस दिन प्रकट हो जाएगा उस दिन आनंद और संगीत से, उस दिन सारा जीवन, श्वास-श्वास, आलोकित सौंदर्य से भर जाता है। उस सौंदर्य का सब में अनुभव हो सके, यह प्रार्थना करता हूं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना है, उसके लिए अनुगृहीत हूं। अंत में सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा के लिए मेरे प्रणाम स्वीकार करें।